मूल्य १)

जगदीशप्रसाद बी० कॉम, द्वारा
दी ऐज्यूकेशनल प्रेस, सिटी स्टेशन रोड आगरा में मुद्रित।

प्राक्कथन
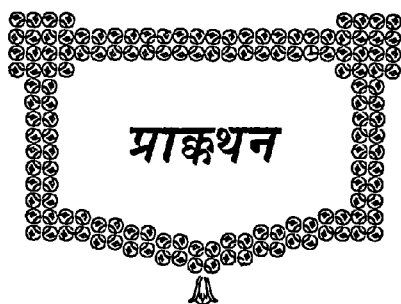
वर्तमान युग के जीवन-संग्राम में विज्ञान का विशेष स्थान है। मानव-जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जिसमें कि विज्ञान का थोड़ा-बहुत हाथ न हो। ऐसी अवस्था में प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को विज्ञान के मोटे सिद्धान्तों तथा उनके व्यवहारिक पहलू से परिचित होना आवश्यक है।

खेद की बात है कि हमारे स्कूल और कालेज के विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी विज्ञान सम्बन्धी साधारण से साधारण बातों से अनभिज्ञ रहते हैं। आजकल के शिक्षित मनुष्यों के लिए सब विषयों का कुछ कुछ ज्ञान और किसी विषय का सब कुछ तो नहीं (क्योंकि यह बात प्रायः असम्भव सी है) किन्तु पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना वाञ्छनीय समझा जाता है इसके विपरीत भारतवर्ष में प्रायः यह देखा जाता है कि काव्य साहित्य के विद्यार्थी विज्ञान के नाम से कोसों दूर भागते हैं, और विज्ञान के शिक्षार्थी काव्य-कला का स्पर्श भी नहीं करते। इसीलिए बहुत से भारतीय विद्यार्थी उन उद्योग धन्धों की ओर जिनमें कि विज्ञान का प्रारम्भिक ज्ञान अपेक्षित होता है मुख भी नहीं करते।

मेरे मित्र बाबू गुलाबराय ने जिनकी साहित्यिक कृतियों से हिन्दी संसार परिचित है प्रस्तुत पुस्तक (विज्ञान-वार्त्ता) इसी

उद्देश्य से लिखी है कि हिन्दी जानने वाले भारतीय विद्यार्थियों में विज्ञान सम्बन्धी जानकारी बढ़े और वे वैज्ञानिकों के उत्साह-पूर्ण जीवन-वृत्तान्त को पढ़कर विज्ञान के अध्ययन की ओर आकर्षित हों। बाबू साहब का उद्योग सराहनीय है। मैं समझता हूँ कि उक्त पुस्तक से पाठकों की विज्ञान-सम्बन्धी जानकारी बढ़ेगी और उनकी कूप-मण्डूकता कुछ कम होगी। इसी के साथ यह भी आशा की जाती है कि पुस्तक के अध्ययन से विद्यार्थियों में साहस और उत्साह की मात्रा बढ़ेगी। लेखक महोदय ने वैज्ञानिक बातों को बड़े साहित्यिक और मनोरम ढङ्ग से लिखा है।

यह हिन्दी का दुर्भाग्य है कि अभी तक पारिभाषिक शब्द निश्चित नहीं हैं। एक ही वैज्ञानिक घटना के लिए कई शब्द प्रयुक्त होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में भी इस अनिश्चयता का प्रभाव यत्र-तत्र दिखलाई पड़ता है। हिन्दी भाषा की इस कमी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा द्वारा हो ताकि ऐसी पुस्तकों की माँग बढ़े और विद्वान लोग एक दूसरे के परिश्रम से लाभ उठाकर एक निश्चित पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कर सकें।

आशा है कि हिन्दी के पाठकगण इस पुस्तक को अपनाकर इससे यथोचित लाभ उठायँगे।

Physics Department
Allahabad University

१६-६-३६

सालगराम भार्गव,

एम० एस-सी०

लेखक का निवेदन

विज्ञान का इतिहास राजनैतिक इतिहास से किसी प्रकार कम महत्व नहीं रखता। विज्ञान की कार्यस्थली राजनैतिक रण-भूमि से कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत है। उसकी विजय लक्ष्मी पीछे हटना नहीं जानती, इसीलिए उसके अधिकृत राज्य की सीमाएँ दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती हैं। विज्ञान ने मनुष्य को एक प्रकार का साम्यमय, नियमवद्ध (उच्छ्रृङ्खलतापूर्ण नहीं) स्वातंत्र्य प्रदान किया है। प्रकृति की भयावनी शक्तियाँ मनुष्य की क्रीत दासियाँ वन गई हैं। मनुष्य जाति का यह सब गौरव और वैभव वैज्ञानिकों की चिरकालीन अखण्ड प्रकृति-सेवा और तपस्या का फल है।

साहित्य ने इतिहास प्रसिद्ध रण-बाँकुरे वीरों, पुण्यश्लोक महात्माओं और धर्म-प्रवर्तकों और यशोधन सरस्वती के कृपा-पात्र कवियों की गुणगरिमा का खूब गान किया है। यद्यपि वैज्ञानिकों ने भी अपने प्रकार से इस जड़ संसार में ईश्वर की महत्ता और अनन्त शक्तियों का साक्षातकार कराने में योग दिया है तथापि हमारे साहित्यिक लोग उन कर्मवीरों की कीर्ति-कौमुदी को विस्तार देने में उदासीन रहे हैं। अब ऐसा समय आ रहा है कि जब इस प्रगति-शील संसार में विज्ञान की उपेक्षा करना कठिन हो जायगा। कानन-चारी विरक्त महात्माओं को छोड़ कर साधारण मनुष्यों को तो पद पद पर विज्ञान से उपकृत होना पड़ता है। ऐसी दशा में वैज्ञानिक आविष्कारों का साधारण परिचय प्राप्त करलेना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

वास्तविक बात तो यह है कि विज्ञान के थोड़े बहुत ज्ञान के बिना आजकल कोई मनुष्य अपने को शिक्षित और विदग्ध (Cultured) नहीं कह सकता।

यद्यपि सब विद्यार्थियों को विज्ञान के क्रमबद्ध अध्ययन का सुअवसर नहीं मिलता है तथापि इसका कोई कारण नहीं कि वे लोग नवीन युग के आविष्कारों का चलता हुआ परिचय प्राप्त करने से वञ्चित रहें; साधारण ज्ञान के सभी अधिकारी हैं। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है कि विद्यार्थीगण वर्तमान काल के नये नये आविष्कारों का साधारण ज्ञान प्राप्त करलें ताकि वे अपनी शिक्षा की पूर्ति कर अपने मानसिक क्षितिज को कुछ अधिक विस्तृत कर सकें और वैज्ञानिक क्षेत्र के तपस्विओं के प्रति अपने हृदय में कृतज्ञता के भाव उत्पन्न कर अपने जीवन में गवेषणा और जिज्ञासा की वृत्ति उत्पन्न कर सकें।

प्रस्तुत पुस्तक में चलते मुहाविरों, सुन्दर साहित्यक शब्दावली और कविता के उद्धरणों का यथा स्थान प्रयोग कर पुस्तक को विद्यार्थियों एवं साधारण पाठकों के लिए रोचक और उपयोगी बनाने का उद्योग किया गया है।

इस पुस्तक में प्रायः उन्हीं आविष्कारों का वर्णन किया गया है जिनका कि मानव जीवन से सम्बन्ध है और जो मानव जाति के लिए हितकर सिद्ध हुए हैं। प्रत्येक आविष्कार के इतिहास और उसके आविष्कारक के जीवन वृत्त पर यथेष्ट आलोक डाला गया है। वैज्ञानिकों के जीवन की उन घटनाओं पर अधिक जोर दिया गया है जिनके अध्ययन से विद्यार्थियों में साहस और स्फूर्ति की मात्रा बढ़े। इन बातों के अतिरिक्त आविष्कारों के कुछ मोटे मोटे सिद्धान्त भी बतलाए गए हैं। उनकी उपयोगिता की ओर विद्यार्थियों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया है जिससे कि वे न केवल अपने जीवन में उनसे लाभ उठायँ वरन्

उनकी ओर आकर्षित हो भावी जीवन में उनका विशेष अध्ययन कर सकें।

विद्युत और चुम्बक के साधारण सिद्धान्तों को समझाने के लिए इस पुस्तक के अन्त में एक परिशिष्ट अध्याय भी जोड़ दिया गया है क्योंकि बिजली से सम्बन्ध रखने वाले बहुत से आविष्कारों को भली प्रकार समझने के अर्थ उन सिद्धान्तों का कम से कम चलता हुआ ज्ञान होना आवश्यक है। साधारण पाठक उसको छोड़ सकते हैं, किन्तु यदि उसे पढ़ें तो वह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

मेरी धारणा है कि हमारे देश में जो बेकारी फैली हुई है उसका बहुत कुछ कारण यह भी है कि हमारे विद्यार्थी विज्ञान की ओर यथेष्ट रूप से आकर्षित नहीं हुए हैं। विना परिचय के आकर्षण नहीं होता। मुझे आशा है कि हमारे विद्यार्थी इस पुस्तक को पढ़ कर विज्ञान के अध्ययन की ओर आकर्षित होंगे।

यह पुस्तक वैज्ञानिक होने का दावा नहीं करती है। इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में सहायक हो। इस सम्बन्ध में जो कुछ कार्य होना है उसका यह शतांश या सहस्रांश भी नहीं है। इस विषय में मेरा केवल इतना वक्तव्य अवश्य है कि हमारे विद्यार्थीगण यदि मातृभाषा द्वारा विज्ञान का परिचय प्राप्त करेंगे तो वे वैज्ञानिक सिद्धान्तों का जनता में भी प्रचार कर सकेंगे और शिक्षित और अशिक्षितों तथा विचार करने वालों और काम करने वालों के बीच में इतना अन्तर न रहेगा। इस ध्येय की पूर्ति के अर्थ हिन्दी भाषा में कई प्रयत्न हुए हैं, उनमें से यह भी एक है, आशा है कि सहृदय पाठक गण इसे उदारता पूर्वक अपनायेंगे।

अन्त में मैं अपने मित्र आगरा कॉलेज के भौतिक विज्ञान विभाग के प्रोफ़ेसर श्री माधौलालजी जैसवाल, एम. एस. सी के

प्रति जिनसे कि इस ग्रन्थ के लिखने में बड़ी सहायता मिली है अपनी कृतज्ञता प्रकाशन करना चाहता हूँ। मैं उन लेखकों का भी विशेष आभारी हूँ जिनसे कि इस पुस्तक के लिखने में मुझे सहायता मिली है। देहली के प्रसिद्ध विद्युत सामग्री विक्रेता एफ़० सी० ओसलर (F. C. Osler) का उनसे प्राप्त हुए हिमी-कारक (Refrigater) और अँगीठी के ब्लॉकों के लिए अनुगृहीत हूँ।

जैन बोर्डिङ्ग हाउस
आगरा
२०-८-३६

गुलाबराय

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

प्रारम्भिक (Preliminary)

१ विज्ञान क्या है १

प्रकाशमय जगत (The luminous world)

२ गेलीलियो और दुरबीन ११
३ सर आइज़ेक न्यूटन और गुरुत्वाकर्षण ... २०
४ गगन-मण्डल की सैर २५

विद्युत के प्रयोग (Applications of electricity)

५ तार ३६
६ एलेक्ज़ेण्डर ग्रेहमबेल और टेलीफ़ोन ... ४६
७ आकाश वाणी 'बेतार का तार' ... ५३
८ रॉञ्जन किरण (एक्सरे) ६०
९ बिजली के अन्य प्रयोग ६४

रसायन और उससे सम्बन्ध रखने वाले व्यवसाय

(Chemistry and applied industries)

१० रसायन शास्त्र और उसके प्रयोग ... ६९
११ मेडेम क्यूरी और रेडियम ७८
१२ शक्ति के भण्डार कोयला और पेट्रोल ... ८४
१३ बैसीमर और फ़ौलाद ८९

विषय पृष्ठ

आधुनिक यान (Modern Conveyances)

१४ रेलगाड़ी ६४
१५ रॉबर्ट फ़ुल्टन और वाष्प नौका ... १०३
१६ मोटर कार १०६
१७ पनडुब्बी नाव ११७
१८ वायुयान १२१

शब्द और प्रकाश के चित्र (Pictures of sound and light)

१९ एडीसन और ग्रामोफ़ोन १२८
२० फ़ोटोग्राफ़ी १३६
२१ सिनेमा और टॉकी ... ...

लेखन और टाइप सम्बन्धी मशीनें
(Writing and Type-machines)

२२ मुद्रण-यंत्र १५०
२३ लाइनो टाइप १५५
२४ टाइप राइटर १६२

जीवन सम्बन्धी (Portaining to life)

२५ चार्ल्स डार्विन का विकासवाद ... १६७
२६ सर जगदीशचन्द्र वसु १७५
२७ डॉक्टर सिमसन और क्लोरोफॉर्म ... १८४
२८ पास्च्युर और कीटाणुवाद १८९
२९ सर रौस और मलेरिया कीटाणु ... १९८
३० भोजन तत्व और विटामिन २०१
परिशिष्ट (Appendix) २०८

सूर्य का परिवार

(पृष्ठ ३६)

* विज्ञान वार्त्ता *

अध्याय १

विज्ञान क्या है ?

चाँद सूर्य की शोभा अद्भुत बारी से आना दिन रात।
त्यों अनन्त तारा-मण्डल से सज जाना रजनी का गात॥

* * * *

तरजन गरजन घन-मण्डल की बिजली बरषा का सञ्चार।
जिस में देखो परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार॥

—श्रीधर पाठक

हम जिन मनुष्यों के सम्पर्क में आते हैं उनका स्वभाव जानने की कोशिश करते हैं। कोई नौकर अपने मालिक का स्वभाव बिना जाने काम नहीं चला सकता। यदि मालिक का स्वभाव एकसा रहता है तो नौकर को अपने काम में कठिनाई नहीं पड़ती, यदि वह जानले कि 'साहब' अमुक समय पर घर लौटते हैं और अमुक समय पर खाना माँगते हैं तो वह समय पर सब चीजें तैयार कर लेता है, किन्तु यदि 'साहब' कभी कोई बात चाहें और कभी कोई, तो नौकर को झूँझल आने लगती है और वह कहने लगता है कि अव्यवस्थित-चित्त लोगों की प्रसन्नता भी

भयंकर होती है। अगर कोई स्कूल एक दिन दस बजे खुले, दूसरे दिन बारह बजे और तीसरे दिन सुबह के पौने पाँच बजे तो कोई विद्यार्थी उस स्कूल में पैर भी न रखना चाहेगा।

सौभाग्य से प्रकृति के जिस स्कूल में मनुष्य को पढ़ना होता है उसमें ऐसी अनियमता नहीं है। सूर्य रोज पूरब में ही निकलता है, ध्रुव तारा सदा उत्तर में ही रहता है, चन्द्रमा द्वितीया से लगाकर पूर्णिमा तक क्रम से बढ़ता और फिर घटता है। ऋतुएँ अपने समय पर आती हैं और अपना प्रभाव दिखलाती हैं। आग का स्वभाव जलाना है, तो वह कभी अपने जलाने का काम नहीं छोड़ती है। फल हमेशा जमीन की ओर ही गिरते हैं। जब जब हम अपने हाथ एक दूसरे से रगड़ते हैं तब तब उनमें उष्णता आती है। पृथ्वी में जब हम चने के बीज डालते हैं तब उससे चने का ही पौधा जमता है, गेंहू का नहीं; और गेंहू से चना नहीं उत्पन्न होता। जब हम किसी चीज को गरम करते हैं तो उसका आकार बढ़ता है, घटता नहीं। ऐसा सभी दिन और सभी समय समान परिस्थिति वाले सभी देशों में होता है।

प्राकृतिक वस्तुओं के इस प्रकार के न बदलने वाले व्यवहार को प्रकृति की एकाकारता (Uniformity) कहते हैं। यदि प्रकृति अपनी एकाकारता छोड़ दे तो संसार का कोई कार्य न चले। यदि अग्नि अपनी उष्णता त्याग दे तो न पानी गरम हो, न खाना बने और यदि जल अपनी स्वाभाविक तरलता खो दे तो नल से पानी ही न निकले (अत्यन्त ठंडे देशों की बात दूसरी है) मनुष्य, प्रकृति की इसी एकाकारता के कारण अपना काम चलाता है। वह जानता है कि लोहा गरम करने से बढ़ता है तभी वह पहिये की हाल को गरम करके उसके ऊपर चढ़ाता है। गरमी देने से धातुओं के बढ़ने के कई प्रयोग दिखलाये जा सकते

हैं। एक प्रयोग नीचे के चित्र में दिया हुआ है। ठंडी अवस्था में गोला चक्कर के भीतर से नहीं निकलता। चक्कर को गरम करने पर गोला उसके भीतर से निकल जाता है।
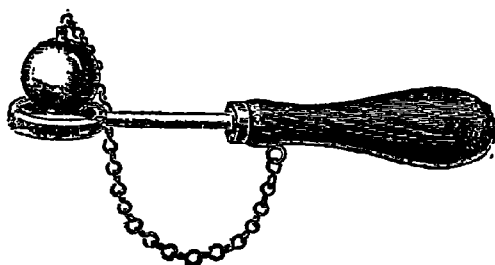
प्रकृति में एकाकारता के साथ कभी कभी भिन्नता भी दिखलाई पड़ती है। हम देखते हैं कि गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) के विरुद्ध चिड़िया आसमान में उड़ती है। चिड़िया ही क्या, अब तो भारी भारी हवाई जहाज़ भी आकाश में उड़ने लगे हैं। सुई पानी पर तैर सकती है। यदि आप सुई को पानी पर तैराना चाहें तो एक बड़े कटोरे में पानी लीजिये, सिगरेट बनाने का पतला काग़ज़ या स्याही-चट के एक टुकड़े को लेकर उस पर एक छोटी सुई रखिए, धीरे से काग़ज़ को पानी के ऊपर रख दीजिए, थोड़ी देर में काग़ज़ गल कर नीचे बैठ जायगा और सुई तैरती रहेगी। लोहे या धातु की बनी हुई नाव भी पानी में तैरती है। लोग फ़व्वारे में पानी को ऊपर उठाते हैं इत्यादि।

उपर्युक्त बातें प्रकृति की एकाकारता के अपवाद स्वरूप अवश्य दिखलाई पड़ती हैं; किन्तु ज़रा विचार करने पर मालूम होगा कि ये सब अपवाद, अपवाद नहीं हैं वरन् नियमों ही के पोषक हैं। कोई घटनाएँ यदि प्रकृति के एक नियम का अपवाद दिखलाई पड़ती हैं तो वे किसी दूसरे नियम के आधार पर चलती हैं।

चिड़ियाँ, गुब्बारे और वायुयान गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध तभी उड़ पाते हैं जब कि वे गुरुत्वाकर्षण की शक्ति से अधिक शक्ति उत्पन्न कर लेते हैं। जब यह शक्ति नहीं रहती तभी वे गिर पड़ते हैं। चिड़िया में जब कोई तीर या गोली मार देता है तब वह ढेले की तरह ज़मीन पर गिर पड़ती है। पेट्रोल चुकते ही वायुयान को नीचे उतरना पड़ता है। गुब्बारे तो हलकी वायु से ही भरे होते हैं, जब यह हवा निकल जाती है तभी वे गिर पड़ते हैं।

सुई जो पानी पर तैरती है उसका भी एक कारण है, वह यह कि पानी पर एक झिल्ली का सा बन्धन रहता है। (आप लोगों ने देखा होगा कि पानी भरा गिलास किनारे से भी कुछ ऊपर भर जाता है और यदि इस झिल्ली के से बन्धन को किसी सींक से तोड़ दें तो पानी फैल जाता है)। यह पानी का स्वाभाविक बन्धन सुई को अपने ऊपर धारण करने की शक्ति रखता है लेकिन पैसे को धारण नहीं कर सकता।

लोहे की नाव भी पानी में तभी तक नहीं डूबती जब तक कि उसका और उसमें बैठने वाले मनुष्यों का बोझ उतने पानी के बोझ से जो कि उसके भीतर आ सके भारी न हो। नल या फ़व्वारे का पानी भी तभी ऊपर उठता है जब कि या तो कोई हवा आदि का दबाव उसे ऊँचा उठाता है या उस फ़व्वारे का सम्बन्ध ऊपर रक्खे हुए पानी की टंकी वग़ैरह से किया गया हो, उस दशा में पानी का दबाव उसको ऊपर उठाता है। यह नियम है कि टंकी का पानी जितनी ऊँचाई पर होगा, फ़व्वारे का पानी भी उतना ऊँचा जाने की कोशिश करेगा।

इसी प्रकार हम जिन जिन अपवादों की खोज करेंगे उनमें हमको प्रकृति का कोई न कोई नियम छिपा हुआ दिखलाई पड़ेगा। ऐसे अपवादों को ही देखकर प्रकृति के और

नियमों का पता चला है। जहाँ पर किसी ग्रह की चाल में कुछ अन्तर दिखलाई पड़ता है वहाँ पर हमको उसके कारण की खोज करने पर पता चल जाता है कि कोई दूसरा पिण्ड उस पर अपने आकर्षण का प्रभाव डाल रहा है। इसी प्रकार 'यूरेनस' आदि नए ग्रहों का पता चला है।

प्रकृति में जहाँ देखो वहाँ एकाकारता ही है। प्रकृति नियमों के बन्धन में बँधी हुई है। सभी प्राकृतिक वस्तुएँ एक ही प्रकार से काम करती हैं। इन काम करने के एक से प्रकारों को नियम कहते हैं। विज्ञान प्रकृति के इन्हीं नियमों का अध्ययन करता है, किन्तु यह अध्ययन अनाड़ी का सा अध्ययन नहीं है। यह अध्ययन व्यवस्था और निश्चयता के साथ होता है। वैज्ञानिक ज्ञान 'बावन तोले पाव रत्ती' ठीक होता है, तभी तो वह सौ वर्ष आगे तक के चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण का यथार्थ समय बतला देता है।

विज्ञान के ज्ञान में व्यवस्था रहती है, अर्थात् एक ज्ञान का दूसरे ज्ञान से सम्बन्ध रहता है। साधारण आदमी केवल यही जानता है कि चौमासों में घड़े का पानी ठंडा नहीं होता; वैज्ञानिक बतलायगा कि उन दिनों हवा में बहुत पानी रहता है और इसलिए हवा अपने में और अधिक पानी को नहीं ले सकती। वायु-मण्डल पानी को जल्दी-जल्दी उड़ने की गुंजाइश नहीं देता। पानी के उड़ने में कुछ शक्ति ख़र्च होती है, वह शक्ति पानी की गरमी से आती है। शक्ति का व्यय नहीं होता और पानी की गरमी भी नहीं निकल पाती। लू के दिनों में हवा इस पानी से उड़ने वाली भाप को जल्दी-जल्दी ग्रहण करती है और पानी ठंडा हो जाता है। आप यदि स्पिरिट को हाथ में लें तो बड़ी ठंडी मालूम होगी, वह इसीलिये कि स्पिरिट जल्दी उड़ जाती है और उसके उड़ने में उसकी गरमी ख़र्च हो जाती है।

जल्दी उड़ने वाले प्रायः सभी पदार्थ ठंडक देते हैं। बुखार वाले रोगियों के सिर पर सिरके से भीगा हुआ कपड़ा इसीलिए रक्खा जाता है कि सिरका जल्दी उड़ जाता है और माथे को ठंढा कर देता है। अस्तु,

विज्ञान वह विद्या है जिससे हम पदार्थों के, चाहे वे भौतिक हों चाहे अभौतिक, व्यवहार के नियम एक निश्चित रूप में और व्यवस्था के साथ जानने का यत्न करते हैं।

विज्ञान को वैशेषिक सूत्रों में 'अदुष्ट विद्या' कहा है। अर्थात् इसके नियमों में अन्तर नहीं आता। मनुष्य इन नियमों को समझ कर इनसे लाभ उठाता है। पानी के दबाव का नियम जान कर हम पम्प या पिचकारी बनाते हैं। वाष्प के फैलाव का नियम और उसके द्रवीभूत होने का (अर्थात् फिर पानी में परिणत हो जाने का) नियम जान कर हम वाष्प के इंजन बनाते हैं। बिजली और चुम्बक के नियम जान कर हम बिजली के अद्भुत चमत्कार दिखलाते हैं। प्रकाश के नियम जान कर हम दूरबीन और खुर्दबीन बनाते हैं, इत्यादि इत्यादि। इस प्रकार की नई चीज के बनाने को आविष्कार (Invention) कहते हैं। किसी नियम वा प्रकृति के गुप्त रहस्य को जानने वा किसी तारा वा ग्रह का पता लगाने को 'खोज' (Discovery) कहते हैं। किसी भी वस्तु वा घटना को वैज्ञानिक रीति से देखने को निरीक्षण (Observation) कहते हैं। इसमें दूरवीक्षण वा अनुवीक्षण यंत्र बड़े सहायक होते हैं। हम निरीक्षण की सुविधा के लिए जब स्वयं कोई परिस्थिति उपस्थित करते या कोई नई वस्तु तैयार करते हैं तो उस क्रिया को प्रयोग (Experiment) कहते हैं। जब कोई वाद (Theory) अनुभव से प्रमाणित हो जाता है तब हम उसे नियम (Law) कहते हैं।

विज्ञान का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। सब वस्तुओं के व्यवस्थित

ज्ञान को हम विज्ञान कहते हैं। इसलिए प्रत्येक चीज़ का विज्ञान हो सकता है। इसीलिए अमूर्त पदार्थों के भी जैसे—(मनो-विज्ञान, समाज-विज्ञान, राजनीति-विज्ञान) विज्ञान होते हैं। यहाँ पर हमारा अभिप्राय केवल मूर्त पदार्थों के ही विज्ञान से है। मूर्त पदार्थों के विज्ञान के मुख्य-मुख्य विभाग इस प्रकार हैं:—ज्योति-र्विज्ञान (Astronomy)—यह बड़ा पुराना विज्ञान है। यह केवल ज्योतिर्पिण्डों की गति के नियम का अध्ययन करता है। भौतिक विज्ञान (Physics)—यह विज्ञान पदार्थों का विना विश्लेषण किये ही उनके नियमों का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत गति के नियम, ताप (Heat) के नियम, प्रकाश (Light) के नियम, शब्द (Sound) के नियम तथा बिजली और चुम्बक के नियम आते हैं। रसायन (Chemistry) में चीज़ों की आन्तरिक बनावट की ओर ध्यान दिया जाता है। चीज़ों का विश्लेषण कर के उनके तत्व (Elements) बतलाये जाते हैं और उसके साथ उन तत्वों के आपस में मिश्रण के भी नियम बत-लाये जाते हैं। रसायन-शास्त्र से भी ऊँचा जीवन-विज्ञान (Biology) है, जिसमें जानवर और वनस्पति दोनों का ही अध्ययन शामिल है।

हम भौतिक विज्ञान और रसायन के नियमों के आधार पर बहुत कुछ चीज़ें बनाते हैं। जितने आविष्कार हुए हैं वे प्रायः इन्हीं विज्ञानों के आधार पर हुए हैं। तार, टेलीफ़ोन, बिजली के लम्प, दूरबीन आदि सब भौतिक विज्ञान के चमत्कार हैं। रबर, फ़ौलाद, शक्कर, रंगसाज़ी, साबुन, तेल आदि के व्यवसाय रसायन-शास्त्र पर अवलम्बित हैं। कुछ ऐसे भी आविष्कार हैं जिनमें भौतिक विज्ञान और रसायन दोनों का काम पड़ता है। फ़ोटोग्राफ़ी में लेन्स (ताल) फोकसिंग वग़ैरह का सम्बन्ध भौतिक-विज्ञान से है और प्लेटों का बनाना और

उनका व्यक्त करना रसायन-शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। चिकित्सा-शास्त्र का बहुत कुछ सम्बन्ध जीवन-विज्ञान और रसायन से है।

विज्ञान के अध्ययन के लिए बड़े परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता है। पाश्चात्य देशों के विज्ञानवेत्ताओं ने विज्ञान के हेतु अपना जीवन तक बलिदान कर दिया है। उनको जीवन में सिवाय विज्ञान के अध्ययन के और किसी बात की सुध-बुध नहीं रहती थी। सर हेनरी केवेंडिश रसायन-शास्त्रवेत्ता होने के अतिरिक्त बड़े धनवान पुरुष थे। यदि बैंक के लोग उनसे उनके हिस्सों (Shares) के बारे में कुछ पूछते तो वे झुँझल में आकर कह देते कि 'भाई मुझ से कुछ मत पूछो यदि पूछोगे तो मैं तुम्हारे यहाँ से हिसाब उठा लूँगा'। एक बार इन्हीं महोदय ने चंदा माँगने वाले कुछ सज्जनों से पीछा छुड़ाने के लिए १०,००० पौंड के चैक पर दस्तख़त कर दिये थे। अपने प्रयोग सफल बनाने के हेतु घर की मेज़ कुर्सी तक जला कर भस्म कर देना तो साधारण सी बात है; विज्ञान की वेदी पर न जाने कितने अमूल्य जीवन समर्पण हो चुके हैं। वैज्ञानिक लोगों के चित्त की एकाग्रता अर्जुन की सी होती है जिसमें कि लक्ष्य लगाते समय पक्षी के सिवाय और कुछ नहीं दिखलाई देता।

विज्ञान के अध्ययन के लिए एकाग्रता तो आवश्यक है ही किन्तु इसी के साथ कल्पना और वैज्ञानिक रुचि भी वाञ्छनीय है। आप को यह न समझना चाहिए कि कल्पना का कार्य केवल कविता में ही है, वरन् विज्ञान के लिए भी कल्पना की आवश्यकता है। वैज्ञानिक को ऐसी कल्पना अवश्य करनी पड़ती है कि यदि वह ऐसा करेगा तो क्या फल होगा, किन्तु वह केवल कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ाया करता, उसका सम्बन्ध हमेशा प्रत्यक्ष से रहता है। वह प्रत्यक्ष के आधार पर ही कल्पना का महल खड़ा

करता है और जब तक वह अपनी कल्पना को प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं कर लेता तब तक दम नहीं लेता। वह किसी बात को केवल विश्वास पर आधारित करके सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि उसका प्रमाण चाहता है। अपनी कल्पना जब तक प्रत्यक्ष होते नहीं देख लेता तब तक उसको चैन नहीं मिलता। उसके लिए खाना-पीना हराम हो जाता है। वह अपने को धोखा नहीं देता, न वह सहज में भुलावे में आता है, हर एक बात को नाप तौल कर सौ-सौ बार देखता है और जब तक उसे पूरा निश्चय नहीं होता तब तक वह मुँह से बात नहीं निकालता। वह विफलता से निराश नहीं होता और सफलता से मदोन्मत्त नहीं हो जाता। सफलता प्राप्त करके भी वह विश्राम नहीं लेता।

वैज्ञानिक संसार में आँखें खोलकर चलता है। वह अपने मत के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही उदाहरण खोजता है और यदि प्रतिकूल उदाहरणों की व्याख्या नहीं कर सकता तो अपने मत को बदलने को भी तैयार रहता है। वह हठधर्मी नहीं करता। यही वैज्ञानिक की वैज्ञानिकता है। वैज्ञानिक-बुद्धि केवल वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए ही आवश्यक नहीं वरन् जीवन के प्रत्येक कार्य में आवश्यक है।

हमारे नव युवकों को चाहिये कि जहाँ वे पश्चिम के फैशन का अनुकरण करते हैं वहाँ वे पश्चिमी लोगों के साहस, अध्यवसाय और परिश्रमशीलता को भी अपनावें। उन्हें परिश्रमशीलता को अपने जीवन का अभ्यास बना लेना चाहिये। यह संसार सुमन-शैया नहीं है वरन् कंटकाकीर्ण पथ है। इसमें बिना परिश्रम किये काम नहीं चलता। परिश्रमशीलता के बिना विज्ञान का अध्ययन भी निष्फल जाता है। जिस प्रकार तैरने के सिद्धान्तों को जानने मात्र से तैरना नहीं आता उसी प्रकार विज्ञान के ज्ञान मात्र से आविष्कार नहीं होते। आविष्कारों में थोड़ी बहुत

आकस्मिकता की मात्रा अवश्य रहती है किन्तु जो लोग उससे लाभ नहीं उठाते उनके हाथ कुछ नहीं लगता। उद्योगी को ही लक्ष्मी मिलती है। विना समुद्र मंथन के रत्न हाथ नहीं आते। "नहिं सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः" शिकार पकड़ने के हेतु शेर को भी उछल कूद करनी पड़ती है।

यद्यपि हमारे देश में वैज्ञानिक उन्नति के उतने साधन नहीं हैं जितने कि योरुप के देशों में हैं तथापि सच्चा परिश्रम कभी निष्फल नहीं जाता। सर जे० सी० वोस, डाक्टर पी० सी० राय, सर सी० वी० रमन इस वात के ज्वलन्त उदाहरण हैं। अभी ऐसे रत्नों की संख्या बहुत थोड़ी है। जब प्रत्येक नगर में एक दो ऐसे रत्न उत्पन्न हों तभी भारतवर्ष अपना मानसिक ऋण चुका सकता है।

विद्यार्थियों को चाहिए कि वे जो कुछ पढ़ें उसको अपनावें, उस पर मनन करें, परिश्रम के साथ अपने ज्ञान का प्रयोग करें और जिस प्रकार योरुप के लोगों ने अपने आविष्कारों द्वारा संसार के सुख में वृद्धि की है उसी प्रकार वे भी संसार को अपने ज्ञान से लाभ पहुँचायें और भारतमाता का मुख उज्ज्वल करें।
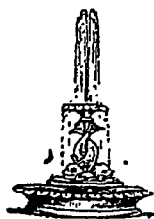
अध्याय १

गेलीलियो और दुरबीन

खोज कीन्ह तुम जनम भरि, सदा सत्य विज्ञान ।
जग हित कीन गेलीलियो, निज जीवन बलिदान ॥
नभ मण्डल कीन्ह्यौं निकट, निर्मित करि दुरबीन ।
तुच्छ नेत्र की शक्ति को, तुमने विस्तृत कीन ॥

जब हम किसी बात की महत्ता कम करके बतलाना चाहते हैं, तब कहते हैं 'यह तो लड़कों का खेल है' किन्तु वास्तव में लड़कों का खेल ऐसी हँसी उड़ाने की बात नहीं है। लड़कों के खेल से बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं, दूरबीन का आविष्कार भी उन्हीं में से है।

कहा जाता है कि हॉलैंड के मिडिलबर्ग नाम के शहर में ज़चरिया जॉनसन नामक एक चश्मे का सौदागर रहता था। जिसके घर जो व्यवसाय होता है, उसके बच्चे, अपनी अनुकरणशील-प्रकृति के कारण, अपने खेल में प्रायः उसी व्यवसाय का नाटक रचा करते हैं। परम्परा की बात प्रमाणित करने के लिए एक कहावत भी प्रचलित है कि 'चूहों के बच्चे बिल ही खोदते हैं।' एक दिन इस चश्मे-वाले के लड़के बाल-कौतूहल-वश चश्मे के शीशों की उलट-पलट कर रहे थे। ऐसा करते समय उन्होंने दो शीशों को एक दूसरे के आगे पीछे रक्खा। सहसा उनको गिरजाघर की मीनार बहुत निकट दिखलाई पड़ने लगी। वे हर्ष से चिल्ला उठे। बालकों के चिल्लाने से चश्मे वाले का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो गया। यदि बालक न चिल्लाते तो उनकी बात शायद उन तक ही रह जाती। चश्मे

वाला भी उस घटना को देख कर आश्चर्य-चकित हो गया। उसने एक लकड़ी के टुकड़े पर दो शीशों को आमने सामने रक्खा और दूरस्थ वस्तुओं की ओर देखना शुरू किया। ऐसा करने पर वे भी निकट दिखाई देने लगीं। यही दूरबीन का आरम्भिक रूप था।

चश्मे के शीशे बहुत दिन से व्यवहार में आते थे, किन्तु किसी ने उन्हें एक दूसरे के आमने-सामने नहीं रक्खा था। कुछ लोग इस आविष्कार का श्रेय मिडिलबर्ग के एक दूसरे चश्मे वाले को देते हैं। अस्तु! जो कुछ भी हो इस यन्त्र का आविष्कार पहले-पहल हॉलैंड में हुआ।

इस आविष्कार को पूर्णता देने वाला तथा उससे पूरा लाभ उठाने वाला इटली का ज्योतिर्विद् गेलीलियो था। गेलीलियो उन लोगों में से है जिनको अपने सिद्धान्तों के कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ा है। जैसे लोग धर्म के लिए शहीद हुए हैं वैसे लोग विज्ञान के लिए भी बलिदान हुए हैं। गेलीलियो यदि जान से नहीं मारा गया था तो उसे बहुत काल तक कारावास में रहना पड़ा जो ऐसी अवस्था के आदमी के लिए मौत से कम न था। गेलीलियो का जीवन-वृत्तान्त बड़ा रोचक और उत्साहप्रद है।

गेलीलियो का जन्म सन् १५६४ में पीसा नगर में हुआ था। इसके पिता उस नगर के एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे और वे विज्ञान में भी रुचि रखते थे। उन्होंने अपने बालक की शिक्षा में कंजूसी नहीं की और उसे तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली का पूरा लाभ दिया। गेलीलियो जब बालक ही था तब उसने घड़ी के पेण्ड्यूलम (Pendulum) के सिद्धान्त की खोज करली थी।

एक बार अन्य बालकों की भाँति वह पीसा के गिरजाघर में गया। उन दिनों बिजली के लैम्प न थे, जो स्विच के दबाने से ही प्रकाशित हो जाते। गिरजे के चपरासी ने

लटकते हुए लम्प को अपनी ओर खींचा और जला कर छोड़ दिया। लम्प इधर से उधर दोलन करने लगा। जब कि और सब लोग धार्मिक गीत गा रहे थे, गेलीलियो हिलते हुए लम्प के दोलनों को गिन रहा था। उन दिनों जेबी घड़ियों का प्रचार भी न था इसलिए उसने प्रकृति-दत्त नब्ज़ की घड़ी से काम लिया। नब्ज़ की गति से लम्प के दोलन की गति का मिलान करने पर उसे पता चला कि लटकने वाला लम्प चाहे जल्दी-जल्दी चलकर अधिक लम्बा दोलन-क्षेत्र रक्खे और चाहे धीरे-धीरे चलकर कम रक्खे, उसको समय उतना ही लगता है। यह एक नई बात उसके हाथ लगी। पीछे से अनुसंधान करने पर उसको यह भी मालूम हुआ कि पेण्ड्यूलम के लम्बे या छोटे होने से समय में अवश्य अन्तर पड़ता है। उसने इसी आधार पर एक यन्त्र बनाया जिससे कि नब्ज़ की गति की नाप हो सके। चिकित्सक लोग उसे व्यवहार में लाने लगे और घड़ी बनाने वालों ने उस सिद्धान्त को अपनाकर बड़ी घड़ियों में पेण्ड्यूलम का प्रयोग करना आरम्भ किया।

गेलीलियो का पिता उसे डाक्टर बनाना चाहता था परन्तु उसकी रुचि ड्रॉइंग में थी और इसी कारण वह गणित का अध्ययन करने लगा। सन् १५८६ में वह गणित-शास्त्र का अध्यापक हो गया। गेलीलियो सच्ची वैज्ञानिक मनोवृत्ति रखता था। सच्चा वैज्ञानिक बिना प्रत्यक्ष प्रमाण के सन्तुष्ट नहीं होता। वह ऊहा, अनुमान, उपमान सभी से काम लेता है किन्तु अन्त में उसका तोष प्रत्यक्ष से ही होता है।

उस ज़माने के लोग अरस्तू को सभी बातों में प्रमाण मानते थे। अरस्तू का विचार था कि यदि एक ही द्रव्य के बने हुए दो भिन्न-भिन्न परिमाण के पदार्थ ऊपर से गिराये जायँ तो भारी पदार्थ जल्दी गिरेगा और हलका देर से। यह बात देखने-

सुनने में ठीक मालूम होती है, और कोई साधारण मनुष्य इस सीधी सी बात में संदेह भी न करता किन्तु वैज्ञानिक के लिए कोई बात स्वयं-सिद्ध नहीं। गेलीलियो ने प्रयोग करना आरम्भ किया और उसे पता चला कि अरस्तू ग़लती पर था। उसने निर्भयता-पूर्वक लोगों का ध्यान इस भूल की ओर आकर्षित किया। लोग सहसा इसको मानने को तैयार न थे, वे उलटा उसका मज़ाक उड़ाने लगे।
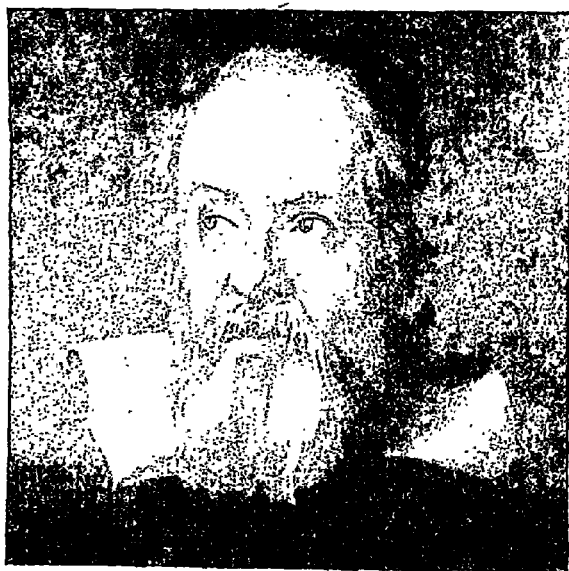
गेलीलियो

गेलीलियो अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए अपने विद्यार्थियों तथा सहकारी अध्यापकों को एक मीनार

पर ले गया; वहाँ से दो गोले, जिनमें एक दश पौंड के बोझ का और दूसरा एक पौंड के बोझ का था, ऊपर से गिराये गये। दोनों एक ही साथ ज़मीन पर आये, थोड़ा अन्तर अवश्य था परन्तु वह हवा की रुकावट के कारण था। उस समय अरस्तू के प्रति लोगों में इतनी श्रद्धा थी कि आँखों-देखी बात को भी मानने को तैयार न हुए।

गेलीलियो को ऐसे अंध-विश्वासी लोगों पर बड़ी झूँझल आती और वह उन को मूर्ख बतलाता था। वे लोग ज्ञान में गेलीलियो के सामने बालक थे किन्तु उमर में बड़े थे, इस कारण अधिकारी-वर्ग में अधिक प्रभाव रखते थे। उन्होंने गेलीलियो का पीसा में रहना मुश्किल कर दिया और उसे त्याग-पत्र देना पड़ा। सौभाग्यवश उसे पडुआ (Padua) में पहले की अपेक्षा अच्छी जगह मिल गई। वहाँ उसने अट्ठारह वर्ष नौकरी की।

एक बार सन् १६०६ में उसे वीनिस (Venice) जाने का अवसर मिला। वहाँ उसने दूरवीक्षण यन्त्र के आविष्कार के सम्बन्ध में सुना। उसने स्वतन्त्र रूप से ऐसे यन्त्र बनाने का उद्योग किया। राँगे की बनी हुई किसी बाजे की एक नलिका ली और दो चश्मे के शीशे लिये, दोनों एक ओर से तो सादा थे किन्तु दूसरी ओर से एक उन्नतोदर (Convex) था और दूसरा नतोदर (Concave) था। (उन्नतोदर उसे कहते हैं जो बाहर निकला हो और नतोदर उसे कहते हैं जो भीतर की तरफ़ बैठा हुआ हो।) उन्नतोदर से चीज़ बड़ी दिखलाई पड़ती है। आतिशी शीशे, जिनके द्वारा अक्षर बड़े दिखलाई पड़ते हैं, इसी के बनते हैं और बूढ़े आदमी जिनको छोटी चीज़ नहीं दिखलाई पड़ती इसी प्रकार के शीशे अपने चश्मों में लगाते हैं। दूरबीन में नतोदर ताल (Lens) द्वारा वस्तु निकट दिखलाई पड़ने लगती हैं और उन्नतोदर ताल द्वारा निकट आई हुई चीज़ बड़ी दिखलाई पड़ती है।

गेलीलियो के सब से पहले यन्त्र में वस्तु को एक-तिहाई दूरी पर ले आने की शक्ति थी। बाद में उसने दूर के पदार्थों का अन्तर तीस हिस्से कम करने वाला यन्त्र भी बना लिया था। उस समय के लिए वह एक अचम्भे की वस्तु थी।
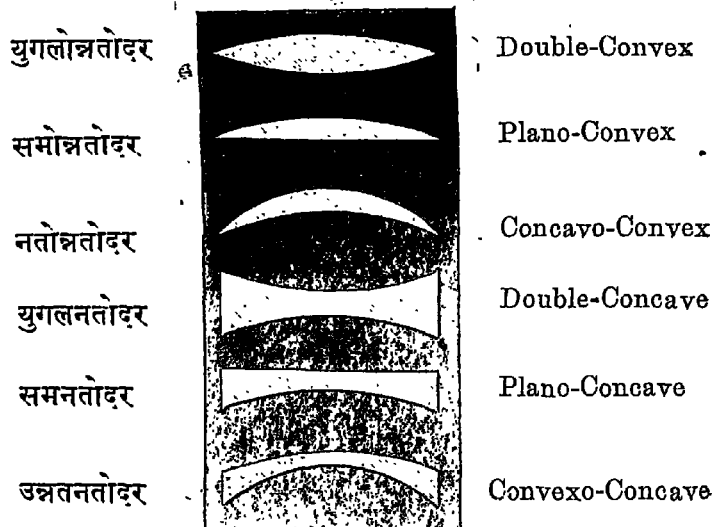
गेलीलियो ने अपने यन्त्र का प्रदर्शन वीनिस में किया। लोगों ने उसे बड़े चाव से देखा। घर की ओर लौटने वाले जहाज़ जो कि बिना दूरबीन के दिखलाई नहीं पड़ते थे यन्त्र की सहायता से दो घंटे पूर्व दृष्टिगोचर हो गये। लोग आश्चर्य-चकित रह गये। चारों ओर उसकी प्रशंसा होने लगी और उसके फलस्वरूप वह पडुआ में उन्नत वेतन पर जीवन भर के लिए प्रोफ़ेसर बना दिया गया।

गेलीलियो ने अपने यन्त्र-द्वारा आकाश-मण्डल की सैर करना

आरम्भ किया और उसे नये नये रहस्य उद्‌घाटित होने लगे। जहाँ साधारण आँख से छः सितारे दिखलाई पड़ते थे वहाँ यंत्र द्वारा छत्तीस दिखलाई पड़े। आकाश-गंगा (Milky way) एक धारा के रूप में न दिखलाई पड़कर अनेक छोटे-छोटे तारों का समूह-रूप दिखलाई पड़ने लगी, वह ऐसी निकट प्रतीत होने लगी कि मानो एक मील ही दूर हो। इस नये यन्त्र-द्वारा वह 'चन्द्रखिलौना' को तीस हिस्सा निकट ले आया। उसके सामने वह दृश्य आया जो किसी साधारण मनुष्य ने नहीं देखा था। (योगियों ने देखा हो तो देखा हो) वहाँ पहाड़, गढ़े और समतल मैदान दिखलाई पड़ने लगे। ७ जनवरी सन् १६१० में उसने यन्त्र-द्वारा अपनी दृष्टि बृहस्पति ग्रह की ओर दौड़ाई। उसने देखा कि उस ग्रह के चारों ओर तीन छोटे तारे से दिखलाई पड़ते थे और पीछे उसे उनका स्थान भी बदलता हुआ दिखलाई पड़ा। अन्त में उसी प्रकार का एक और तारा दृष्टिगोचर हुआ। अब उसको यह निश्चय हो गया कि वे बृहस्पति के चार चन्द्रमा हैं। अब तो उसके सम्बन्ध में 'चार चाँद' लग जाने की उक्ति सार्थक हो गई।

इस प्रकार गेलीलियो की ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। उसी के साथ वह व्योम-मण्डल में नई-नई खोज करने लग गया। चन्द्रमा शीतल है, उसके तथा उसके कलङ्क को लोग सहज में देख सकते हैं, सूर्य में भी धब्बे हैं (लोग इनके बारे में बहुत थोड़ा जानते थे और उसकी चर्चा भी बहुत कम करते थे। बड़े आदमियों के कलङ्क के बारे में लोग कम जानते हैं, वह उनके प्रकाश में छिपा रहता है।) गेलीलियो ने उनके बारे में नई जानकारी प्राप्त की। उसे पता लगा कि सूर्य के धब्बे उसके मुख-मण्डल पर स्थिर होकर नहीं रहते हैं। वे समय-समय पर स्थान बदलते रहते हैं। इस बात से उसने

यह अनुमान किया कि सूर्य भी घूमता है। आजकल लोग सूर्य के धब्बों का अकालों से सम्बन्ध बतलाते हैं। गेलीलियो ने शनि के चारों ओर के छल्ले के से चक्रों का भी पता लगाया। इन नई गवेषणाओं से गेलीलियो की ख्याति उच्चतम शिखिर पर पहुँच गई। ऊँचाई पर पहुँच कर कोई मनुष्य और विशेष-कर वह जिसमें कि विनय का अभाव हो दूसरों के आक्रमणों से सुरक्षित नहीं रह सकता।

गेलीलियो की गवेषणाओं ने धार्मिक संसार में हलचल मचा दी। गेलीलियो कोपरनीकस के सिद्धान्त (अर्थात् पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है) को मानता था और धार्मिक लोग प्टोल्मी के सिद्धान्तों में अचल विश्वास रखते थे। वे मानते थे कि पृथ्वी ही सारे विश्व का केन्द्र है और उसके चारों ओर सूर्य आदि ग्रह घूमते हैं। हमारे यहाँ भी जन-साधारण की भाषा में पृथ्वी को 'अचला' कहते हैं, किन्तु हमारे यहाँ के लोगों में इतनी कट्टरता न थी; लोग दूसरे मत को भी (कि पृथ्वी घूमती है) मानते थे।

योरुप में वे दिन धार्मिक अत्याचारों के थे। पोप केवल धार्मिक सत्ताधिकारी ही न था वरन् उसके पास राजनैतिक अधिकार भी था। सन् १६०० में ज्योनार्डो ब्रूनो (Gionardo Bruno) को बाइबिल के विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रचार करने के कारण चिता में जीवित जलाये जाने का दण्ड मिला था।

गेलीलियो भी पोप के दरबार में बुलाया गया। उसके ऊपर धर्म के विरुद्ध प्रचार करने का अभियोग लगाया गया। निर्णायक लोग विज्ञान से अनभिज्ञ थे। गेलीलियो की बात उनकी समझ में न आई। उसके लिए फ़तवा दे दिया गया कि वह या तो अपने सिद्धान्तों को छोड़े, या कारागार में वास करे। कारागार के भय से उसने ऊपरी तौर से अपने सिद्धान्तों को छोड़ दिया, (विश्वास तो युक्ति से बदला जा सकता है, तलवार से नहीं)

किन्तु उनके प्रचार से बाज़ न आया। अन्त में सत्तर वर्ष की आयु में वह जीवन भर के लिये जेल भेज दिया गया। जेल में अधिकारियों ने इसके साथ नरमी का व्यवहार किया। उसके पास मिलने वाले आ जा सकते थे। एक बार इंगलैंड का महाकवि मिल्टन भी उसके पास गया था। थोड़े ही दिनों बाद गेलीलियो की लड़की मर गई। बुढ़ापे में इससे बढ़कर और क्या मानसिक आघात हो सकता था? उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और उसकी आँखों और कानों की शक्ति जाती रही। जिन नेत्रों से उसने दूरस्थ गगन-मण्डल के रहस्यों को देखा था, वे संसार की वस्तुओं को देखने से भी वञ्चित हो गये। ८ जनवरी सन् १६४२ को ७८ वर्ष की आयु में गेलीलियो परलोक-वासी हुआ।

गेलीलियो बन्दी होकर मरा था, इसलिए उस समय उसका कोई स्मारक नहीं बनाया गया; किन्तु पृथ्वी से आकाश-मण्डल का सम्बन्ध स्थापित करने वाले इस महान् व्यक्ति के प्रति जनता की विरोध-भावना चिर-काल तक नहीं ठहर सकती थी। यद्यपि गेलीलियो की गवेषणाएँ ही उसको संसार की स्मृति में चिरस्थायी बनाने के लिये पर्याप्त थीं तथापि पीछे से फ्लोरेंस में, जहाँ वह दफ़नाया गया था, उसका एक सुन्दर स्मारक भी बनवा दिया गया।

ऊपर दूरबीन का मूल सिद्धान्त बतलाया जा चुका है। एक शीशे से जो बाहर की ओर रहता है दूरस्थ वस्तुओं के चित्र निकट लाये जाते हैं और दूसरे शीशे द्वारा उन चित्रों का आकार बढ़ाया जाता है। विस्तार देने वाला शीशा आँख के पास होने के कारण 'चक्षु-ताल' कहलाता है और वस्तुओं को निकट लाने वाला ताल वस्तु-ताल कहलाता है। दूर-वीक्षण यन्त्रों में ऐसी योजना रहती है जिसके द्वारा इन तालों का अन्तर घटाया बढ़ाया जा सकता है।

दूरवीक्षण यंत्र दो प्रकार के होते हैं—एक व्योमी (आकाश से सम्बन्ध रखने वाले) और दूसरे पार्थिव। व्योमी यन्त्र भी दो प्रकार के होते हैं। एक तो वैसा ही जैसा कि गेलीलियो का था और दूसरा वह जो न्यूटन ने बनाया था। इसमें एक नतोदर शीशे पर दूरस्थ वस्तु का प्रतिबिम्ब डाल कर उस प्रतिबिम्ब को विस्तार दिया जाता है।

आजकल सब से बड़ी दूरबीन माउन्ट विलसन वेधशाला, केलीफोर्निया (अमरीका) में है। यह पैंतालीस फ़ीट ऊँची है। यन्त्र-द्वारा इसका रुख़ चाहे जिधर किया जा सकता है। इसका बोझ कुल २६०० मन है। इसका शीशा ही १२२ मन के लगभग है। इसके द्वारा चन्द्रदेव जो हमारी पृथ्वी से २४००० मील की दूरी पर हैं ऐसे निकट आ जाते हैं मानो वे पचास मील की दूरी पर हों। यह दूरबीन भी प्रतिबिम्ब वाली दूरबीन है। यशोदा मैया ने भी बाल-कृष्ण को चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखला कर ही सन्तुष्ट किया था।
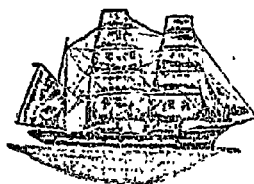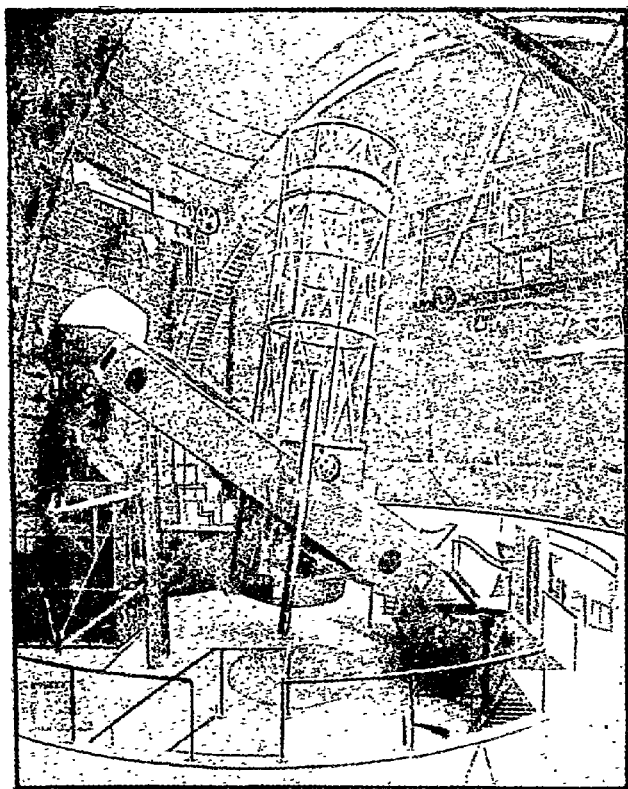
दुनियाँ की सबसे बड़ी दूरबीन

अध्याय ३

सर आईज़ेक न्यूटन और गुरुत्वाकर्षण

"Nature and Nature's Laws lay hid in Night
God said Let Newton be and all was Light."

बहुत से लोगों के मन में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता होगा कि इतने तारागण आकाश में किस प्रकार डटे हुए हैं? और एक दूसरे से टकरा कर चूर-चूर क्यों नहीं हो जाते? इस समस्या को सर आईज़ेक न्यूटन ने हल किया था।

"पूत के पाँव पालने में ही दीख जाते हैं" वाली लोकोक्ति सब जगह चरितार्थ नहीं होती। न्यूटन के बाल्यकाल को देख कर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह भविष्य में इतना बड़ा विचार-प्रवर्त्तक बनकर अक्षय कीर्त्ति का उपार्जन कर सकेगा। इसका जन्म सन् १६४२ में लिकनशायर के एक गाँव में हुआ था। प्रचलित प्रथा के अनुसार बालक स्कूल भेजा गया। वह अपनी कक्षा में सब से नीचा रहता था। उस से ऊँचे लड़के उसका उपहास किया करते थे। एक दिन जब वह स्कूल से लौट रहा था, एक लड़के ने उसके लात मार दी। न्यूटन अपमान को न सह सका और ताव में आकर उसने उस लड़के को चुनौती दी। दोनों लड़के अपने दिल का अरमान निकालने के लिए एक गिरजे के अहाते में चले गये। न्यूटन यद्यपि जन्म से ही कमजोर था और दूसरे लड़के से अवस्था में भी कम था तथापि उसने दूसरे लड़के को ऐसा ठोका कि उसे छटी का दूध याद आगया और उस रोज़ के बाद उसने न्यूटन को कभी न छेड़ा।

न्यूटन में स्वाभिमान था, वह दूसरे का उपहास-पात्र नहीं बनना चाहता था। शीघ्र ही कठिन परिश्रम से वह क्लास में सब से ऊँचा स्थान पा गया किन्तु तो भी उसका चित्त अध्ययन में न लगता था। उसको छोटे-छोटे यंत्र बनाने का बड़ा चाव था। उसने अपने घर की छत पर एक छोटी सी हवा की चक्की बनाई थी। जब हवा न चलती तो उसके खेल में बाधा पड़ती। अन्त में उसने उसमें एक ऐसा पहिया लगाया जो चूहे के पैरों से घूम सके। थोड़ी ऊँचाई पर रक्खे हुए एक पिंजड़े में वह कुछ दाने डाल देता और जब चूहा दानों को प्राप्त करने का यत्न करता तो उसके पैरों के उद्योग से पहिया घूमने लगता। इसी प्रकार उसने पानी से चलने वाली एक बड़ी घड़ी भी बनाई।

बालक न्यूटन को अन्य बालकों की भाँति पतंग उड़ाने में भी रुचि थी परन्तु वह बड़ी-बड़ी पतंगें बनाता और उनमें सोमबत्ती की कंडीलें टाँग देता था। लोग उसे देख कर सोचने लगते कि यह चलने वाला तारा कहाँ से आगया। उसने धूप-घड़ियाँ भी बनाई थीं।

न्यूटन जब पन्द्रह वर्ष का था तब उसकी माता ने उसे खेतों का काम सिखाने का निश्चय किया, किन्तु जब वह उसे गाय चराने भेजती तब वह गाय चराने के बदले वहाँ के नाले में जल-संचालित पहिये बनाने में लग जाता और गौएँ दूसरों के खेतों में आनन्द करतीं, उसका उलाहना घरवालों को सहना पड़ता।

किसानी के काम में न्यूटन असफल सिद्ध हुआ, किन्तु उसकी वह असफलता एक दूसरे क्षेत्र में जो कि पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत था, सफलता का कारण बनी। वह पढ़ने के लिए केम्ब्रिज भेज दिया गया। वहाँ उसे रेखागणित का अध्ययन बड़ा रुचिकर लगा। उसके द्वारा उसका गणित-शास्त्र में प्रवेश हो गया। अन्त में उसका ध्यान आकाश के तारों की ओर आक-

षित हुआ। तारागण के विशेष अध्ययन के लिए उसने एक नये प्रकार की प्रतिविम्ब वाली दूरबीन तैयार की जो लोगों को बहुत पसन्द आई।

जब कि न्यूटन इक्कीस वर्ष ही का था उसका ध्यान वृक्ष से गिरते हुए सेव की ओर आकर्षित हुआ। वृक्षों से सेब तथा अन्य फल नित्य ही गिरते हैं किन्तु न्यूटन से पहले उनके गिरने के रहस्य पर किसी ने विवेचना नहीं की थी। न्यूटन सोचने लगा कि फल नीचे ही क्यों गिरता है, ऊपर क्यों नहीं उड़ जाता। इसका कारण पृथ्वी का आकर्षण है जो सेब को अपनी ओर खींचता है। क्या वह चन्द्रमा को भी अपनी ओर खींच सकता है? क्या पृथ्वी भी किसी की ओर खिंची रहती है? इस तरह के प्रश्न उसके मन में उठने लगे। अन्त में उसने यह निश्चय किया कि पृथ्वी के ही आकर्षणवश चन्द्रमा अनन्त आकाश में उड़ कर चला नहीं जाता और पृथ्वी भी सीधी रेखा में न चल कर सूर्य के केन्द्रीय आकर्षण से घूमती रहती है। यह आकर्षण सारे भौतिक संसार में व्याप्त है। इसका प्रभाव वस्तुओं की मात्रा (Mass) और उनकी दूरी पर निर्भर रहती है। अधिक चीज़ कम भारी चीज को आकर्षित करती है और वस्तुएँ जितनी दूर होती हैं उतना ही उनका आकर्षण कम हो जाता है। इस प्रकार उसने ग्रहों के घूमने की व्याख्या की, किन्तु यह व्याख्या घर में बैठे-बैठे नहीं हो गई। इसके लिए उसे बड़ा विचार और परिश्रम करना पड़ा, गति के नियम निश्चित कर प्रयोगों-द्वारा उनको प्रमाणित किया।

ऐन्स्टाइन

न्यूटन ने और भी बहुत से अन्वेषण और आविष्कार किये थे किन्तु उनका गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of Gravita-

tion) सब से महत्व का है। अभी तक सारा संसार उसको मानता था। किन्तु ऐन्स्टाइन (Einstien) ने गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी विचारों में हलचल मचा दी है।

जिस प्रकार कोपर्नीकस और गेलीलियो ने पुरानी रूढ़ियों का गढ़ तोड़ा था उसी प्रकार ऐन्स्टाइन ने भी अपने सिद्धान्त से संसार का नेत्रोन्मीलन कर दिया है। ऐन्स्टाइन ने अपने अपेक्षा-वाद (Relativity) से विज्ञान के निश्चित विचारों को बहुत आघात पहुँचाया है। ऐन्स्टाइन का अपेक्षा-वाद कोई नई चीज़ नहीं है। सब लोग जानते हैं कि दुख की एक घड़ी युग की बराबर लगती है और सुख का समय क्षण में ही बीत जाता है। भारतवर्ष में ग्रीष्म की ताप अँग्रेज़ लोगों को असह्य हो जाती है, ग़रीब किसान उसी में अपनी खेती का काम प्रसन्नता-पूर्वक गाते हुए करता है। जो वस्तु एक के लिए बिष है वही दूसरे के लिए पथ्य बन जाती है। इसी को अपेक्षा-वाद कहते हैं। वृन्द के निम्न लिखित दोहे साधारण जीवन में अपेक्षा-वाद के सिद्धान्त के उदाहरण हैं, देखिए:—

विषहूते सर-सी लगे, रिस मे रस की भाख।
जैसे पित्त ज्वरीन को, करुवी लागत दाख।
एक वस्तु गुन होत है, भिन्न प्रकृति के भाय।
भटा एक कौं पित करे, करत एक कौं बाय॥

प्रत्येक चीज़ की गति, स्थिति वा गुण किसी दूसरी चीज़ पर निर्भर होती है। बुख़ार वाले को सब चीज़ें कड़वी लगती हैं और इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि दो मनुष्यों का मीठे का स्वाद एक सा होता है। यह बात सजीव चीज़ों के लिए ही लागू नहीं है, वरन् निर्जीव पदार्थों के लिए भी ठीक बैठती है।

वस्तु की लम्बाई चौड़ाई ताप के अनुकूल बढ़ती घटती रहती है। जिस गज़ से हम जाड़ों में नापते हैं वह गज़ गर्मियों में बढ़ जाता है। जो चीज़ दूर से छोटी मालूम होती है, वही निकट से बड़ी प्रतीत होती है। उसका आकार किस स्थान पर ठीक माना जावे? जो चीज़ सीधी रेखा में चलती मालूम होती है वह विचार करने में झुकी हुई रेखा में चलती हुई प्रमाणित होगी। हम पृथ्वी के साथ सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, किन्तु उस पर सभी प्रकार की सीधी और कुटिल गति से चलते हैं। क्या हमारी सीधी रेखा की चाल वास्तव में सीधी है? तीर की भी चाल सीधी नहीं है। ऐन्स्टाइन ने यह भी बतलाया है कि प्रकाश भी झुकी हुई रेखाओं में आता है। उसका कहना है कि पृथ्वी आकाश में सीधी अनन्त की ओर क्यों नहीं भाग जाती है? इस प्रश्न के दो उत्तर हो सकते हैं, एक तो न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण का, दूसरा यह कि पृथ्वी का मार्ग ही ऐसा वृत्ताकार बना हुआ है। ऐन्स्टाइन का कथन है कि जहाँ कहीं भौतिक पदार्थ होते हैं वहाँ देश में झुकाव आ जाता है।

यदि एक बड़े थाल में कोई गोली घुमाई जाय तो वह थाली के किनारे से बाहर न जायगी। यदि उसी थाली के बीच में एक बड़ा गोला रक्खा हो तो छोटी गोली के वृत्ताकार घूमने की दोनों प्रकार से व्याख्या हो सकती है—एक यह कि गोले के आकर्षण से छोटी गोली वृत्ताकार पथ से घूमती है और दूसरी यह कि थाल के किनारों के कारण यह उस आकार में घूमती है। जो कुछ भी हो ऐन्स्टाइन ने न्यूटन के माने हुए सिद्धान्त में सन्देह अवश्य डाल दिया है। हमारे देश के प्रसिद्ध गणितज्ञ जस्टिस सुलैमान ऐन्स्टाइन के सिद्धान्तों का खण्डन कर न्यूटन का पक्ष ले रहे हैं।

अध्याय ४

गगन-मण्डल की सैर

ऐ असंख्य भाग्यों के शासक !
ऐ असीम छवि के सावन !
ऐ अरण्य निशि के आश्वासन !
विश्व सुकवि के सजग नयन !
ऐ सुदूरता के सम्मोहन !
ऐ निर्जनता के आह्वान !
काल-कुहू, मेरा दुर्गम-मग,
दीपित करदो, हे द्युतिमान !

'पन्त'

कभी अँधेरी रात में आकाश की ओर देखिए तो आपको सारा आकाश, जगमगाते ज्योतिर्पिण्डों से भरा हुआ दिखलाई पड़ेगा। कवि लोग इनकी शोभा पर मुग्ध होकर हीरक खण्डों, मणियों और मोतियों से इनकी तुलना करते हैं, किन्तु वास्तव में ये पिण्ड हमारी पृथ्वी से भी कहीं बड़े हैं, और एक दूसरे से लाखों मील की दूरी पर हैं। ज्योतिष-शास्त्र के अध्ययन से ही विश्व की अनन्तता और महत्ता ('महतो महीयान') का पता चलता है और विश्व-नियन्ता की गुण-गरिमा का ध्यान कर हमारी बुद्धि चक्कर खाने लग जाती है।

ग्रहों और नक्षत्रों का सम्बन्ध हमारे धार्मिक जीवन से होने के कारण हमारे देश में आकाश-मण्डल का अध्ययन बहुत प्राचीन काल से होने लगा था। ज्योतिष-शास्त्र छः वेदाङ्गों* में

* शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, और निरुक्त।

से एक माना जाता है। इस शास्त्र के सम्बन्ध में हमारे आचार्यों ने बहुत कुछ अनुसन्धान किये हैं। ज्योतिष-शास्त्र के अठारह आदि-प्रवर्तकों के अतिरिक्त आर्यभट्ट, वाराहमिहर, भास्कराचार्य, चन्द्रशेखर (जन्म-संवत् १८९२) आदि कई धुरन्धर विद्वान् हुए हैं। आमेराधिपति जयसिंह द्वारा पुराने सिद्धान्तों के अनुकूल बनवाई हुई काशी, जयपुर और दिल्ली की वेधशालाएँ अब भी मौजूद हैं। दिल्ली की वेधशाला 'जन्तर मन्तर' (यन्त्र मन्दिर) के नाम से प्रख्यात है। प्राचीन और नवीन ज्योतिष-शास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन के लिए विशेष योग्यता और अवकाश की आवश्यकता है। इसलिए आजकल के लोगों ने तारागण, ग्रहों और उपग्रहों के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त किया है, यहाँ पर उसका ही संक्षिप्त वर्णन कर देना पर्याप्त होगा।

तारा (Star) साधारण भाषा में तो छोटे-छोटे सितारों को कहते हैं, किन्तु पारिभाषिक रूप से तारा उन ज्योतिर्पिण्डों को कहते हैं जो अपना स्थान नहीं छोड़ते। अर्थात् वे चाहे आकाश में आगे भले ही बढ़ते रहें किन्तु और ग्रहों के सम्बन्ध में उनका स्थान स्थिर रहता है। सूर्य भी एक तारा ही है जो हमारे अधिक निकट होने के कारण हमको इतना बड़ा दिखलाई पड़ता है। ग्रह वे हैं जो किसी केन्द्रीय तारा के चारों ओर घूमते हैं। इनको अङ्गरेज़ी में प्लेनेट (Planet) कहते हैं। पृथ्वी, मंगल, बुद्ध, आदि ग्रह हैं।

जो इन ग्रहों के चारों ओर घूमें वे उपग्रह कहलाते हैं। चन्द्रमा उपग्रह है। इनके अतिरिक्त नक्षत्र (तारागण के समूह), टूटते तारे, पुच्छल तारे आदि अनेक ज्योतिर्पिण्डों से यह गगन-मण्डल भरा पड़ा है। पुस्तक के आदि में रंगीन चित्र देखिए। यद्यपि आकाश में अनेकों तारे हैं, जिनका प्रकाश यहाँ तक आने में लाखों वर्ष लग जाते हैं तथापि इस समय हमको अपने सौर परिवार ही से काम है।

सौर परिवार में ६ ग्रह माने जाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं:—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु (बृहस्पति), शनि, यूरेनस, नेपचून और प्लूटो। यह क्रम सूर्य से दूरी के हिसाब से रक्खा गया है। बुध सूर्य से निकटतम है, इसलिये उसका नाम पहले आया। यह सब ग्रह, उपग्रह सूर्य के ही बच्चे और नाती हैं—इन्होंने सूर्य से ही अलग होकर स्वतन्त्र सत्ता धारण की है—किन्तु पारिवारिक सम्बन्ध के कारण उसी के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं।

सूर्य

सब से पहले इस परिवार के मूल-पुरुष-रूप सूर्य का वर्णन कर देना आवश्यक है। सूर्य एक तारा है और ताराओं में भी मामूली परिमाण का तारा है। *गगन-मण्डल में* सूर्य जैसे अरबों तारे होंगे। ध्रुवतारा जो दूरी के कारण छोटा सा दिखाई देता है, सूर्य से बड़ा है। सूर्य से चार सौ गुने बड़े तारे भी मौजूद हैं। सूर्य का आकार हमारी पृथ्वी से बहुत बड़ा है। हमारी पृथ्वी, सूर्य के एक धब्बे में समा जायगी। यदि सूर्य को छब्बीस फ़ीट के व्यास का गोला मानें तो हमारी पृथ्वी उसके सामने 'टेनिस बॉल' के बराबर लगेगी। सूर्य हमसे कितनी दूर है इसका अनुमान प्रायः इस बात से लग सकता है कि सूर्य का प्रकाश १८६४०० मील प्रति सैकिण्ड की गति से चल कर हमारे पास तक सवा आठ मिनट में आता है। यदि तीस मील प्रति मिनट की गति से जाने वाला एक तोप का गोला चन्द्रमा तक जाय तो उसे वहाँ पहुँचने में आठ दिन लगेंगे और यदि वह उसी चाल से चलता रहे तो सूर्य तक पहुँचने में उसे प्रायः सात वर्ष लगेंगे। यदि सूर्य हमसे इसकी आधी दूरी पर होता, तो हम उसकी ताप से जल जाते और इस पृथ्वी तल पर जीवन असम्भव हो जाता। सूर्य यदि हमसे और दूर चला जाय तो हम सर्दी के

कारण यहाँ न रह सकें। सूर्य्य की ही गरमी से इस पृथ्वी में उत्पत्ति और जीवन है, इसीलिये उस को 'सविता' अर्थात् पैदा करने वाला कहा है। सूर्य का प्रकाश जलती हुई धातुओं के श्वेत प्रकाश जैसा मालूम पड़ता है। उसमें सफ़ेद गैसों के तूफ़ान से आते मालूम पड़ते हैं। कुछ लोगों का मत है कि सूर्य की अनन्त शक्ति और प्रकाश 'रेडियम' के कारण है।

जब पूर्ण सूर्य-ग्रहण होता है तभी खगोल-वेत्ता सूर्य के वायु-मण्डल को भली प्रकार देख सकते हैं, इसीलिए वे सूर्य के खग्रास की प्रतीक्षा बड़े चाव से करते रहते हैं। सूर्य में भी कलंक हैं। सूर्य के धब्बे एक स्थान में नहीं रहते इससे मालूम होता है कि सूर्य भी अपनी कीली पर घूमता है।

बुध

यह ग्रह यद्यपि सूर्य से निकटतम है तथापि वह सूर्य से तीन करोड़ साठ लाख मील की दूरी पर है। यह ग्रह पृथ्वी से बहुत छोटा है। इसका व्यास केवल तीन हज़ार मील है। पृथ्वी का व्यास लगभग आठ हज़ार मील है। पृथ्वी की अपेक्षा बुध में कम बोझ होने के कारण वहाँ पर गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है, इसलिए जो मनुष्य यहाँ पर डेढ़ सौ पौण्ड का है वह बुध के तारे में केवल सैंतीस पौण्ड का होगा। जो ग्रह सूर्य के निकट हैं वे उसकी जल्दी से परिक्रमा लगा लेते हैं। बुध का वर्ष केवल ८८ दिन का होता है।

सूर्य के निकट होने के कारण, यह ग्रह सहज में दिखलाई नहीं पड़ता। कभी यह सायंकाल को दिखलाई पड़ता है तो कभी प्रातःकाल को। जब यह सूर्य के निकट होता है तब यह पैंतीस मील प्रति मिनट की गति से चलता है और जब दूरी पर होता है तब इसकी गति तेईस मील प्रति सैकिण्ड होती है। इस ग्रह का कोई उपग्रह नहीं है।

शुक्र

यह ग्रह सूर्य से करीब छः करोड़ सत्तर लाख मील की दूरी पर है और दो सौ पच्चीस दिन में सूर्य का चक्कर लगा लेता है। यह बहुत चमकदार सितारा है। कभी-कभी यह दिन में भी बिना दूरबीन के दिखलाई पड़ जाता है। बुध की तरह यह कभी सायंकाल को निकलता है कभी प्रातःकाल को। गाँव के लोग इसके उदय से प्रातःकाल होने का अनुमान लगा लेते हैं। यह तारा सूर्य से छः करोड़ सत्तर लाख मील की दूरी पर है। यद्यपि यह पृथ्वी के निकट है तथापि मंगल की अपेक्षा हम इसके सम्बन्ध में कम जानते हैं।

पृथ्वी

इस ग्रह पर हम रहते ही हैं—यह समझ कर हम उसको उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। पृथ्वी अपनी कीली पर चौबीस घण्टे और अड़तालीस मिनट में घूमती है। हमने केवल सुभीते के लिये चौबीस घण्टे का दिन-रात मान लिया है। वैसे दिन-रात चौबीस घण्टे से अधिक का होता है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। इस परिक्रमा में उसे ३६५ दिन लगते हैं।

चन्द्र

चन्द्रदेव का साहित्यिक लोगों में बड़ा मान है। कभी-कभी इनको खरी खोटी सुनाकर उपालम्भ भी दिये जाते हैं। कलंकी तो यह प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु कलंकी होते हुए भी ये अपने शीतल प्रकाश से संसार को मोह लेते हैं और सुधाकर की पदवी से विभूषित होते हैं। इतनी महिमा होते हुए भी ये दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमा में जो चमक है वह वहाँ पर पड़ी हुई सूर्य की धूप है। मुकुर की भाँति चन्द्रमा का धरातल सूर्य के आलोक को पृथ्वी पर प्रतिफलित कर देता

है। हमारी पृथ्वी भी चन्द्रमा में एक ज्योतिर्पिण्ड की भाँति चमकती होगी। शुक्ल-पक्ष के आरम्भ में अर्ध-चन्द्र के साथ साथ पूर्णचन्द्र की भी धुँधली श्वेत आभा दिखलाई पड़ती है। यह श्वेत आभा पृथ्वी की ज्योत्स्ना की है। अपूर्ण चन्द्र का जो चमकता भाग है, वह, वही भाग है जिस पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है; और जो धुँधला भाग है, वह पृथ्वी की ज्योत्स्ना से आलोकित भाग है।

चन्द्रमा अन्य ज्योतिर्पिण्डों की अपेक्षा बहुत छोटा है, किन्तु पृथ्वी के निकट होने के कारण बहुत बड़ा लगता है। चन्द्रमा हमारे निकटतम होते हुए भी बहुत दूर है। चालीस मील फ़ी घण्टे चलने वाली रेल गाड़ी को, इस चाल से निरन्तर चलते रहने पर भी चन्द्रलोक तक पहुँचने में आठ महीने लग जायँगे। वहाँ वायुयान की गति नहीं, क्योंकि जब वायु-मण्डल ही नहीं तब वहाँ वायुयान कहाँ से जायँगे? तो भी लोग चन्द्रलोक की यात्रा का सुख-स्वप्न देखा करते हैं और तोप के गोले के भीतर बैठकर जाने का मंसूबा बाँधते रहते हैं। परन्तु यदि लोग वहाँ पहुँच भी गये तो विना वायु के वहाँ रहेंगे कैसे? ज्योतिर्विदों का कहना है कि हवा के अभाव के कारण वहाँ सर्दी और गरमी दोनों ही अधिक मात्रा में पड़ती हैं। पृथ्वी का वायु-मण्डल सूर्य की गरमी को अपने में सोख कर इस लोक के तापमान को बहुत कुछ नियंत्रित रखता है। गरमी में अधिक गरमी नहीं रहने पाती और जाड़ों में सोखी हुई गरमी, शीत को अतिमात्रा में पहुँचने से बचाए रखती है।

चन्द्रमा के कलंक के बारे में कई कल्पनाएँ हैं। कवि-मस्तिष्क की सब से सुन्दर कल्पनाएँ हमको रामचरित मानस और 'नैषध' में मिलेंगीं। बुढ़िया पुराण की कल्पना तो प्रायः लोग जानते ही हैं कि 'डुकरिया' बैठी-बैठी चरखा कातती रहती है। वास्तव में

चन्द्र के धरातल पर ये विस्तृत गढ़े हैं। कोई इन्हें बुझे हुए ज्वाला मुखी पहाड़ों के गढ़े बतलाते हैं तो कोई कहते हैं कि टूटे हुए तारों के गिरने के कारण ये गढ़े हो गये हैं। जो कुछ भी हो, ये गढ़े हैं वहुत विस्तृत। इन गढ़ों में सब से बड़ा गढ़ा एक सौ तेतीस मील लम्बा है।

चन्द्रमा पर बुझे हुए ज्वाला मुखी का एक गढ़ा

यद्यपि चन्द्रमा के सम्बन्ध में हमारा बहुत कुछ ज्ञान अनुमान पर अवलम्बित है तथापि यह प्राय: निश्चित सा है कि उसमें जीवधारी नहीं रहते। वायु-मण्डल के अभाव से चन्द्रमा में आकाश काला दिखाई पड़ेगा, नकि भूलोक का सा नीला। हमको आकाश जो नीला दिखलाई पड़ता है वह वायुमण्डल के ही प्रभाव से है क्योंकि वायुमण्डल सूर्य के प्रकाश (जो सात रंगों का बना होता है) के सब रंगों को अपने में शोषण कर लेता है, केवल नीले रंग को सोख नहीं पाता, वही हमको दिखलाई पड़ता है। वहाँ पर यदि मनुष्य रहते भी हों तो वायु के अभाव से उनकी बातचीत भी सुनाई न पड़ेगी, संकेतों में बात करनी पड़ेगी। वहाँ का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी की अपेक्षा छः हिस्सा कम होगा। वहाँ हम छः गुना ऊँचा उछल सकेंगे किन्तु हवा के विना ऐसे लोक में जाकर मनुष्य करेंगे क्या ?

मंगल

यह ग्रह पृथ्वी से बहुत छोटा है (पृथ्वी से मंगल ऐसे प्रायः सात ग्रह बन सकते हैं) किन्तु और सब बातों में पृथ्वी से बहुत कुछ मिलता है। यह भी पृथ्वी की भाँति अपनी कीली पर चौबीस घण्टे साढ़े सेंतीस मिनट में घूम जाता है। इसलिये वहाँ भी हमारे बराबर के दिन-रात होंगे। इसको सूर्य की परिक्रमा देने में हमारे ६८७ दिन लगते हैं। इस प्रकार वहाँ का वर्ष हमारे वर्ष से दूना बड़ा होता है और ऋतुएँ भी दूने काल तक ठहरती हैं। इसके दो चन्द्रमा भी होते हैं। एक चन्द्रमा इसके चारों ओर सात घंटे में परिक्रमा लगा लेता है और दूसरा तीस घण्टे में। इसके ध्रुवों पर बरफ़ दिखलाई पड़ती है किन्तु वह गर्मियों में साफ़ हो जाती है। इसमें कभी-कभी बादल भी दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें नहरों का जाल दिखलाई देता है, जिससे अनुमान होता है कि इसमें हमारे से ही मनुष्य होंगे। वैज्ञानिक लोग वहाँ से तार-हीन तार द्वारा संवाद विनिमय करने का भी सुख-स्वप्न देख रहे हैं, मालूम नहीं कि यह स्वप्न कब और कहाँ तक चरितार्थ होगा। पृथ्वी से बहुत सी बातों में समानता रखने के कारण यह ग्रह 'भौम' अर्थात् पृथ्वी का पुत्र कहलाता है। इसका रंग लाल माना गया है, इसीसे इसका सम्बन्ध युद्ध से बतलाया जाता है। हिन्दू लोग भी इसका रंग लाल मानते हैं। ग्रहों के रंगों के सम्बन्ध में सूरदास जी का नीचे का पद पढ़ने योग्य है:—

नील[1], सेत[2] पट पीत[3] लालमनि[4], लटकन भाल लुनाई।
सनि[1], गुरु-असुर[2] (शुक्र), देव-गुरु[3] (बृहस्पति) मिलि मनौ भौम[4]
सहित समुदाई

बृहस्पति

बृहस्पति देवताओं का गुरु माना गया है, इसमें बहुत कुछ सत्य है। यदि सब ग्रह मिला कर रक्खे जायँ तो भी बृहस्पति का पल्ला नीचा ही रहेगा। इस हिसाब से भी बृहस्पति गुरु (भारी) है। यदि पृथ्वी खेलने की गोली के बराबर मानी जाय तो बृहस्पति को फ़ुटबॉल के बराबर मानना होगा।

बृहस्पति के चार चन्द्रमा तो गेलीलियो ने खोज लिये थे उसके बाद चार और चन्द्रमा दिखलाई पड़े हैं, परन्तु वे इतनी आसानी से नहीं दिखलाई देते।

शनि

शनि के दस चन्द्रमा हैं और वे उसके चारों ओर छल्ले से दिखलाई पड़ते हैं (ये छल्ले छोटे छोटे चन्द्रमाओं के समूह हैं)। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह धीमी चाल से चलता है तभी तो इसकी दशा जल्दी नहीं बदलती। शनि अपनी कीली पर दस घण्टे में घूम जाता है और सूर्य की परिक्रमा देने में उसे हमारे उन्नीस साल लगते हैं। यह ग्रह पृथ्वी से नौ गुना बड़ा है। शनि बादलों से घिरा रहने के कारण अच्छी तरह नहीं दिखलाई पड़ता। इसीलिए अपने यहाँ उसका रंग नीला माना गया है।

यूरेनस

इस ग्रह की खोज का श्रेय हर्शेल (Herschel) को है पहले पहल उन्होंने इसे पुच्छल तारा समझा था। पीछे से पता लगा कि यह ग्रह है। इस ग्रह के विषय में प्राचीनों को कुछ नहीं मालूम था। यह ग्रह पृथ्वी से चौंसठ गुना बड़ा है और सूर्य की अपेक्षा उन्नीस गुनी दूरी पर है। प्रकाश १८६४०० मील प्रति सेकिण्ड की गति से चलता है, इस गति से चलते हुए प्रकाश को सूर्य से यहाँ तक आने में सवा आठ मिनट लगते हैं और यूरेनस से यहाँ तक आने में दो घंटे सेंतीस मिनट लगेंगे। एक

एक्सप्रेस रेलगाड़ी को उस ग्रह तक पहुँचने में क़रीब पाँच हज़ार आठसौ छयालीस वर्ष लगेंगे। यूरेनस में भी चार चन्द्रमा हैं। इसका व्यास ३४६०० मील है। यह ग्रह सवा चार मील फ़ी सेकिण्ड की गति से चलता हुआ हमारे २४ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा कर लेता है।

नेपच्यून

नेपच्यून की खोज हुए अभी पूरे सौ वर्ष भी नहीं हुए। इसकी खोज का इतिहास बड़ा विचित्र है। यूरेनस की खोज के पश्चात् सन् १८०० और १८४० में उसके लिए जो स्थान निर्धारित किया गया था उस पर वह नहीं दिखलाई दिया। इस कारण लोगों को सन्देह हुआ कि कोई और ग्रह आकर्षण द्वारा उसे अपने पथ से विचलित कर रहा है। इस आधार पर एडेम्स नाम के एक अँगरेज़ ज्योतिर्विद ने और ली नेरियर नाम के एक फ़रासीसी ज्योतिर्विद ने गणित करना आरम्भ किया और दोनों ने अपने अपने अनुमान से बतलाया कि कौनसी तारीख़ को नया ग्रह दिखलाई पड़ेगा। यद्यपि अँगरेज़ ज्योतिर्विद को दूरबीन द्वारा
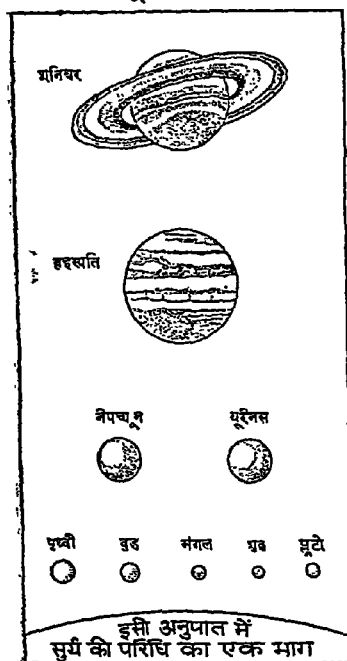
सूर्य तथा ग्रहों का सापेक्षित आकार

अपनी भविष्यवाणी की सच्चाई को प्रमाणित करने का अवसर न मिल सका, तथापि फ़रासीसी के उद्योग से वह बात बर्लिन

की वेधशाला में प्रमाणित हुई और दोनों को इसकी खोज का श्रेय मिला।

इस बात के प्रमाणित हो जाने से ज्योतिर्विदों के गणित-सन्बन्धी और भी अनुमान सिद्ध हो गये। वैसे तो ज्योतिर्विदों के गणित की सचाई चन्द्र और सूर्य-ग्रहण द्वारा प्रायः हर साल ही सिद्ध होती रहती है, किन्तु नेपच्यून की खोज ने गणित शास्त्र के चमत्कारपूर्ण सत्य को पूर्णतया प्रमाणित कर दिया। नेपच्यून सूर्य से २,७८६,०००,००० मील की दूरी पर है। यह ग्रह ३$\frac{1}{3}$ मील प्रति सेकिण्ड की चाल से हमारे १६४$\frac{1}{2}$ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करता है।

प्लूटो

नेपच्यून की भाँति प्लूटो की भी खोज ज्योतिर्विदों के अनुमान से ही हुई है। इसकी खोज हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ है और लोग इसके बारे में बहुत कम जानते हैं। इसकी खोज १३ मार्च सन् १६३० को घोषित हुई थी। यह ग्रह सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा सैंतालीस गुनी दूरी पर है। इस पर से सूर्य इतना ही बड़ा मालूम होता होगा जितना कि हमारी पृथ्वी से बृहस्पति। सूर्य से अधिक दूरी होने के कारण इसमें इतनी सर्दी पड़ती होगी कि उसमें चलना-फिरना तो दूर रहा जीवन धारण करना भी असम्भव होगा। हिन्दू लोगों ने जिस प्रकार नेपच्यून का नाम वारुणी रक्खा है उसी प्रकार प्लूटो का नाम यम रक्खा है। कुछ अँगरेज़ी पढ़े हिन्दू ज्योतिषी यूरेनस और नेपच्यून की भी ग्रह दशाएँ लगाया करते हैं।

इन ग्रहों के अतिरिक्त सूर्य के अनेक तारागण हैं, जिनका परिवार भी सौर परिवार की भाँति विस्तृत है। ये तारे इतनी दूर हैं कि निकटतम तारे से हमारे पास प्रकाश आने में प्रायः चार वर्ष लग जाते हैं। सूर्य से प्रकाश आने में

केवल सवा आठ मिनट लगते हैं। ध्रुव तारे से यहाँ तक प्रकाश आने में प्रायः सत्तर वर्ष लग जाते हैं। तो भी ये तारे बहुत दूर नहीं गिने जाते। दूर के तारों का प्रकाश हम तक आने में लाखों वर्ष लग जायँगे। आकाश गंगा भी तारागणों का समूह है।

ये तारे हमें स्थिर दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु ये और सारा सौर मण्डल आठ सौ मील प्रति सैकिण्ड के हिसाब से अनन्त आकाश में चलते रहते हैं। यद्यपि ये तारे एक दूसरे के निकट मालूम होते हैं तथापि इनमें हजारों मील का अन्तर है। इन तारों से भी दूर बहुत सी नीहारिकाएँ (Nabulae) हैं जिनकी वास्तविक दशा जानना कठिन है। यह विश्व अनन्त है। दृश्य संसार में हमारी पृथ्वी का स्थान ऐसा ही होगा जैसा कि प्रयाग जैसे बड़े नगर में एक मटर के दाने का! अदृश्य संसार का तो कुछ लेखा ही नहीं। ईश्वर की महत्ता का इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण हो सकता है। विश्व का अद्भुत चमत्कार देख कर हमको स्वर्गीय सत्यनारायण जी की लिखी हुई निम्नोल्लिखित पंक्तियों की याद आ जाती है—

"को गुन अगम थाह तव पावै।
विश्वरूप अद्भुत अगाध अति,
अनुपम किमि कहि जावै।
रोम रोम ब्रह्मंड ग्रथित रवि,
अनगिन ग्रह ससि तारे।
भ्रमत धुरी अपनी अपनी पै,
निसि दिन न्यारे न्यारे।
घूमत सकल चक्र-मण्डल में,
करत निरन्तर ज्योती।

इक आकरसन-सक्ति डोरि मैं,
मनहु पिरोये मोती।

× × × ×

होत विज्ञबाचाल मूँक लखि,
गति रहस्य - रस - राँची।
भगवन् नेति नेति, तव कीरति,
लसै अखिल जग साँची।"

अध्याय ५

तार

बातचीत करना मनुष्य की प्रधान आवश्यकताओं में से एक है। ऐसे मनुष्य थोड़े ही मिलेंगे जो बिना बातचीत किये रह सकते हों। मनुष्य सामाजिक जीव है और बातचीत करना सामाजिक जीवन का जीवन-प्राण है। बातचीत करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि कहने और सुननेवाले एक दूसरे के आमने सामने ही हों। पत्रों द्वारा लिखित संवाद और दूतों द्वारा मौखिक संवाद भेजने और उनका उत्तर पाने की प्रथा बहुत काल से चली आती है। इतिहास और साहित्य इस बात के साक्षी हैं। पैदल हरकारे घोड़े और ऊँट के सवारों के अतिरिक्त कबूतर, तोते आदि भी संवाद-वाहन का काम करते थे। कभी-कभी ये संवाद-वाहक पत्र न लेजाकर कोई संकेत ही ले जाया करते थे, किन्तु इन सब में समय लगता था। हम कथा और कहानियों में ऐसा पढ़ते और सुनते आये हैं कि चेले ने गुरु जी को याद किया और वे तुरन्त आगये। मालूम नहीं वे लोग ऐसी बात किन्हीं भौतिक साधनों द्वारा करते थे अथवा किन्हीं अलौकिक साधनों द्वारा। जो कुछ भी हो, वे साधन सब के लिए सुलभ न थे। ये बातें प्राचीन काल की हैं और हम नये युग के हैं, हमको इसी युग की बातों से मतलब है।

आइए इस ज़माने के तार के आविष्कार और उसके आविष्कारक के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करें। यद्यपि तार के आविष्कार का श्रेय कई लोगों को है, (इस सम्बन्ध में मद्रास की फौज के डबल्यू० एफ़० कुक (W. F. Cook) नाम के एक

का कार्य न था। इस कार्य में दो तीन वर्ष लगे और चित्रकारी द्वारा उन्होंने जीवन-यापन किया। जो कुछ धन खाने पीने से बचता उसको वे अपने आविष्कार की पूर्ति में खर्च कर देते थे। चित्रकारी अब उनका ध्येय न था, अब वह उनके जीवन-यापन का साधन-मात्र रह गई थी।

कलाकार प्रायः निर्धन होते हैं। अपव्यय न करते हुए भी मोर्स के पास धन का अभाव रहने लगा यहाँ तक कि खाने पीने की सामग्री जुटाने में भी कठिनाई होने लगी। क़रीब-क़रीब भीख माँगने की नौबत आ गई। एक दिन वे चित्रकारी के अपने एक विद्यार्थी के पास गये और उसे अपनी राम-कहानी कह सुनाई। लड़के ने कहा "गुरुवर मुझे बड़ा खेद है, अभी घर से रुपया नहीं आया। एक सप्ताह में आने वाला है।" गुरुदेव ने उत्तर दिया "एक सप्ताह तक तो मैं जीवित भी न रहूँगा, क्षुधा के कारण मर जाऊँगा, और फिर धन का क्या होगा।" 'का बरखा जब कृषी सुखानी'। लड़के के पास केवल १० डालर अर्थात् लगभग ३० रुपये थे (अमरीका जैसे सम्पन्न देश में यह रक़म अधिक नहीं समझी जाती) उसने उन्हें श्रद्धापूर्वक गुरुदेव के अर्पण किये। उस धन को लेकर गुरु और चेला होटल में गये और मोर्स को बीस घण्टे के उपवास के पश्चात् पहला भोजन मिला। इसके पश्चात् मोर्स को इतना आर्थिक संकट न रहा। वे एक कालेज में कला और साहित्य के प्रोफ़ेसर हो गये किन्तु आर्थिक कठिनाई हल होने से उनकी और सब कठिनाइयों का निराकरण नहीं हो गया।

उन दिनों विद्युत्-विज्ञान अपनी बाल्यावस्था में था। पृथक्न्यासक (अर्थात् वे चीनी के लट्टू जो तार के खम्बों पर लगे होते हैं और जो बिजली को खम्बे में जाने से रोके रहते हैं) आदि बिजली की सामग्री उन दिनों

'बौरे गाँव के ऊँट' के समान अचम्भे की वस्तुएँ थीं। उनके सम्पादन करने के लिए मोर्स के पास न धन था और न निर्माण कौशल ही। सच्ची लगन वाले की परमात्मा भी मदद करता है। दैवयोग से उसकी प्रयोग-शाला में एक लोहे के व्यवसायी का लड़का एलफ्रेड बैल आया। वह मोर्स के प्रयोगों से बहुत प्रभावित हुआ। तारबर्क़ी की विशाल सम्भावनाएँ उसकी समझ में आगई और उसको उस व्यवसाय का उज्वल भविष्य दिखलाई पड़ने लगा। बैल की शिफ़ारिस से उसके पिता ने मोर्स को तार के प्रयोगों के लिये २०० डालरों की सहायता दी। केवल इतना ही नहीं वरन् उसने अपने कारख़ाने की सामग्री और श्रमियों से भी काम लेने की उसे आज्ञा दे दी। इस ईश्वर-दत्त सहायता के प्राप्त होने से मोर्स को यथेष्ट सफलता मिली।

सन् १८४३ ई० की २३ फ़र्वरी मोर्स के लिए बड़े महत्व का दिन था। वाशिङ्गटन से वाल्टीमूर तक तार के खम्बे लगाने और लाइन डालने के लिए तीस हज़ार डालरों की मंजूरी का सवाल सीनेट के सामने पेश होने वाला था। वह सीनेट की बैठक का आख़िरी दिन था, रात के दस बज गये थे और बहुत सा काम शेष था। लोगों ने मोर्स से कहा कि उसका वहाँ और ठहरना निरर्थक था, केवल दो घण्टे रह गये थे। वह निराश होकर अपने होटल को लौट गया और सोचने लगा कि दस वर्ष की महनत पर पानी फिर गया किन्तु दूसरे दिन सूर्य्योदय के साथ उसके भाग्य का भी उदय हुआ। प्रातःकाल ही एक रमणी ने आकर उसके प्रस्ताव के पास हो जाने की शुभ सूचना देकर उसे बधाई दी।

रुपये की मंजूरी के ठीक एक साल बाद लाइन तैयार हो गई और पहला संवाद बेल को भेजा गया। संवाद उसी रमणी ने बोला था जिसने प्रस्ताव पास हो जाने

की प्रथम सूचना दी थी। वह इस प्रकार था 'What hath God wrought' अर्थात् ईश्वर ने क्या कर दिखलाया। पहली अप्रेल सन् १८४५ ई० में तारबर्क्री जनता के लिए खोली गई। यह जानकर पाठकों को आश्चर्य होगा कि पहले दिन तार की आमदनी केवल एक सेन्ट (क़रीब २ पैसा) हुई।

यहाँ पर तार के सिद्धान्त पर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक है। यह बात तो ऊपर बतलाई जा चुकी है कि तार का आविष्कार विद्युत्-चुम्बक (Electro-magnet) से हुआ है। विद्युत्-चुम्बक के सिद्धान्त द्वारा इच्छानुकूल मुलायम लोहे में चुम्बक-शक्ति उत्पन्न की जा सकती है, अर्थात् ज़ब तक उसके ऊपर लिपटी हुई कुण्डली में विद्युत्-धारा रहती है तब तक लोहे में चुम्बक-शक्ति रहती है और जब इस धारा का प्रवाह छिन्न कर दिया जाता है तब यह शक्ति जाती रहती है। मोर्स का ग्राहक-यंत्र इसी सिद्धान्त पर बना हुआ है। जब तक विद्युत-चुम्बक-शक्ति द्वारा लोहे में आकर्षण रहता है तब तक वह एक पत्ती को अपनी ओर खींचे रहता है और जब आकर्षण छूट जाता है तब एक स्प्रिंग के बल से पत्ती ऊपर को उठ जाती है और आवाज़ होती है। यदि पत्ती फ़ौरन ही ऊपर को छोड़ी जाय तो हलकी आवाज़ और यदि देर के बाद छोड़ी जाय तो गहरी आवाज होगी। तार भेजने की जो 'डेमी' होती है उसके थोड़ी या बहुत देर दबाये रखने से विद्यु त-धारा थोड़ी या बहुत देर तक बहती रहती है और उसके अनुकूल दूसरी ओर 'गर' या 'गट्ट' की आवाज़ होने लगती है। 'डेमी' स्विच का काम करती है। उसके द्वारा विद्युत्-धारा का प्रवाह जारी होता और टूटता रहता है। बिजली का प्रवाह जारी रखने के लिए अब दो तारों की आवश्यकता नहीं पड़ती। पहले दो तार लगते थे। एक बार एक तार टूट गया और तब भी संवाद

आता रहा। तब से दूसरा तार अनावश्यक हो गया है। चक्कर को पूरा करने के लिये दोनों ओर दूसरे तार का छोर ज़मीन में गाड़ दिया जाता है। दूसरे प्रकार की बिजली ज़मीन से मिल जाती है। एक दूसरे प्रकार का भी तार होता है जिसमें सुई के झुकने से ही संकेत बन जाता है। समुद्र पार जो तार भेजे जाते हैं उन्हें केबिल (Cable) कहते हैं।

इस प्रकार मोर्स ने गर (-) और गट्ट (—) के योगों के कुछ संकेत बना लिये थे जिनके द्वारा हलकी और गहरी आवाज़ों से ही अँगरेज़ी वर्णमाला के सब अक्षर निकल सकते थे। उदाहरणतः मोर्स के नाम के अक्षरों के संकेत नीचे दिए जाते हैं।

M	O	R	S	E
— —	— — —	- — -	- - -	-

अब तार में बहुत उन्नति हो गई है। तार देने वाले को घंटों बैठ कर खुट खुट नहीं करनी पड़ती। यदि किसी की स्पीच तार द्वारा भेजना हो तो खुट खुट करने में चौगुना समय लग जाय क्योंकि मनुष्य बोलता बहुत जल्दी है। अब जैसे ही कोई स्पीच या लम्बा संवाद आता है तो उसको कई लोग बाँट लेते हैं और उसको खटखटाने के बदले एक कागज़ के फीते पर संकेतों के छेद कर लेते हैं। वे सब फीते मशीन पर चढ़ा दिये जाते हैं और कमानी से जल्दी जल्दी घूम कर विद्युत् प्रवाह की गति को नियमित करते रहते हैं। उधर मशीन से दूसरे फ़ीते पर मोर्स इंकर (Morse Inker) नाम के यंत्र से निशान बनते जाते हैं। उन निशानों के अनुकूल दूसरा आदमी टाइप करता चला जाता है। इस प्रकार लम्बा से लम्बा भाषण बहुत शीघ्र तार द्वारा प्रेषित किया जाता है।

अध्याय ६

एलेक्ज़ेन्डर ग्रेहमबेल और टेलीफ़ोन

बड़े शहरों के रहने वाले 'हलो' (Hullo) की आवाज़ से परिचित होंगे और टेलीफ़ोन का नाम तो सभी ने सुना होगा। तार से तो गर गट्ट के संकेत ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजे जाते हैं किन्तु टेलीफ़ोन द्वारा मनुष्य की आवाज़ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाती है। हज़ारों कोस के अन्तर पर बैठे हुए दो मित्र इस प्रकार वार्तालाप कर सकते हैं मानों एक ही कमरे में बैठे हों। बात के इधर से उधर आने जाने में बिल्कुल देर नहीं लगती।

इस अद्भुत यंत्र के आविष्कर्त्ता का नाम एलेक्ज़ेन्डर ग्रेहमबेल था। इसका जन्म सन् १८४७ में स्कॉटलैंड की राजधानी ऐडिनबरा में हुआ था परन्तु शिक्षा इङ्गलैंड में हुई थी। सोलह वर्ष की अवस्था में वह लोगों को वक्तृत्व-कला की शिक्षा देने लग गया था। पीछे से उसने गूँगे बहरों को शिक्षा देने में दक्षता प्राप्त करली थी। इस सम्बन्ध में उसको मनुष्य की वाणी का विशेष रूप से अध्ययन करना पड़ा। स्वास्थ्य-लाभ के हेतु उसे केनाडा जाना पड़ा। वहाँ से वह बोस्टन गया और वहाँ उसे एक बड़े आदमी के गूँगे बहरे पुत्र के अध्यापन का कार्य मिल गया।

गूँगे बहरे लोगों को पढ़ाते पढ़ाते बेल को इस बात का ज्ञान हो गया था कि शब्द मनुष्य के कान तक हवा के कम्पनों (Vibrations) द्वारा पहुँचता है। इससे उसको यह विचार हुआ कि जिस प्रकार शब्द के कम्पन कान की झिल्ली पर

प्रभाव डालते हैं उसी प्रकार वे खाल की या लोहे के पतले पत्तर की चैंदियों (Discs) पर भी प्रभाव डाल सकते हैं। उसने एक शीशे को धूँए से काला करके उस पर शब्द के कम्पनों के अङ्क बनाये। संभवतः इसीसे उस को यह ख्याल हुआ होगा कि कम्पन बिजली के तार द्वारा दूसरी चैंदी तक भी पहुँचाये जा सकते हैं। इसी आधार पर वह काम करने लगा।

बेल को शब्द के सिद्धान्तों का तो पर्याप्त ज्ञान था किन्तु वह विद्युत्-शास्त्र से अनभिज्ञ था। कार्यवश उसे वाशिङ्गटन जाना पड़ा। वहाँ उसको जोजैफ हैनरी (Joseph Henry) से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हैनरी विद्युत-शास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। बेल ने हैनरी को अपनी योजना वतलाई और खेद प्रकट करते हुए कहा, "मैं बिजली के विषय में नहीं जानता, नहीं तो मैं अपनी योजना को सफल वना लेता।" बेल की बातों से हैनरी वड़ा प्रभावित हुआ और उसने कहा "तुम्हारे पास एक बड़ा बिचार है, इसे अवश्य कार्यरूप में परिणत करो। बिजली का ज्ञान सहज में प्राप्त किया जा सकता है।" इस प्रोत्साहन का बेल पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वह बिजली का ज्ञान प्राप्त करने लगा, और अपने सहकारी वाट्सन (Watson) के साथ ध्वनि सम्बन्धी तार के प्रयोग करने लगा। इसी तरह के प्रयोग करते हुए एक आकस्मिक घटना द्वारा ग्रेहमबेल को टेलीफ़ोन में सफलता होने की आशा बँध गई।

एक दिन बेल और उसका सहकारी वाट्सन ध्वनि-सम्बन्धी तार पर कुछ काम कर रहे थे। जिस सिरे पर वाट्सन काम कर रहा था, उसकी एक स्प्रिंग ख़राब हो गई थी और बहुत कुछ उलट फेर करने पर भी काम नहीं दे रही थी। बेल झूँझल में था। वह स्प्रिंग को निकाल कर हथोड़ी से ठोकने पीटने लगा। उस ठोकने पीटने का

शब्द दूसरे सिरे पर बेल को सुनाई पड़ा। तुरन्त ही वह वाट्सन के पास दौड़ा गया और फिर उसी प्रकार चोटों के शब्द को दुहराने के लिए उससे कहा। इस प्रकार दुबारा भी उसे वह शब्द सुनाई पड़ा। बेल को निश्चय हो गया कि जब निरर्थक शब्द सुनाई पड़ सकता है, तब सार्थक शब्द सुनने में भी कोई कठिनाई न होगी। बड़े आदमी क्रोध से भी लाभ उठा लेते हैं।

उपर्युक्त आकस्मिक घटना सन् १८७५ में हुई थी। इसके पश्चात् बेल और वाट्सन प्रायः चालीस सप्ताह तक अदम्य उत्साह के साथ काम करते रहे। अन्त में १० मार्च सन् १८७६ को उनका बनाया हुआ यंत्र बोलने लगा। एक छोर पर बेल था और दूसरे पर वाट्सन। अकस्मात वाट्सन को ये शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई पड़े 'Watson, Come here; I want you.' अर्थात् वाट्सन यहाँ आओ, मुझे तुमसे काम है। वाट्सन बेल के पास तिमंज़िले पर दौड़ता हुआ गया और कहा—'मैं तुम्हारे शब्द सुन सकता हूँ।'

सफलता तो हो गई, अब प्रचार और विज्ञापन की आवश्यकता थी। बेल के पास इसके कोई साधन न थे किन्तु 'निर्बल के बल राम'। मिस हबर्ड (Miss Hubbard) से, जो कि बेल की एक शिष्या थी, उसके विवाह की बात चीत चल रही थी। उसके भावी श्वसुर मिस्टर हबर्ड को बेल के आविष्कार में स्वाभाविक दिलचस्पी थी। उनके प्रभाव से बेल का यन्त्र फ़्लेडेल्फ़िया की शत-वर्षीय प्रदर्शिनी में रक्खा गया। जब निर्णायक-गण इस यंत्र के पास पहुँचे, वे बहुत क्लान्त और क्षुधित थे। ऐसे समय में वे यन्त्र की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके और उसको खिलौना कह कर उसकी उपेक्षा करना ही चाहते थे कि उसी समय ब्रेज़िल के बादशाह टहलते हुए उधर आ निकले। बोस्टन में वे बेल का गूँगे बहरों का स्कूल देख चुके थे, और उसे

पहचानते थे। उन्होंने उस यन्त्र को देखने की इच्छा प्रकट की। वाट्सन ने दूसरे छोर से बात करना आरम्भ किया। बादशाह ने ग्राहक यन्त्र (Receiver) को कान से लगाते ही प्रसन्नता से कहा 'यह तो बात करता है।' दर्शकों में इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता लॉर्ड केलविन भी थे। उन्होंने भी उस यन्त्र की प्रशंसा की।

इस प्रकार टेलीफ़ोन की चारों ओर चर्चा होने लगी और वह उस प्रदर्शिनी का आकर्षण-केन्द्र बन गया। इतने पर भी व्यापारी लोगों को इसकी उपयोगिता में विश्वास दिलाना सहज काम न था। १४ फर्वरी सन् १८७७ को जब बेल ने अपना अधिकार सुरक्षित कराने के लिए आवेदन पत्र दिया तब ऐलिशा ग्रे (Elisha Gray) ने भी इस यन्त्र के प्रथम आविष्कारक होने का दावा किया। अन्त में यही निश्चय किया गया कि बेल को ही प्रथम आविष्कारक होने का श्रेय दिया जाय। एडीसन साहब ने इस यन्त्र में और भी उन्नति की।

पहले तो व्यापारी लोग इस यन्त्र की हँसी उड़ाते थे, किन्तु पाँच वर्ष पश्चात् सन् १८८१ में ६० लाख डालर की पूंजी से 'बेल टेलीफ़ोन कम्पनी' का संगठन हुआ। तब से धीरे-धीरे इसका प्रचार बढ़ता रहा आजकल तो टेलीफ़ोन व्यापार और शासन का जीवन-प्राण बन रहा है। ४ अप्रेल सन् १६२२ को बेल का स्वर्गवास हो गया। उस दिन उनके सम्मानार्थ अमरीका और केनाडा के सब टेलीफ़ोन बन्द रक्खे गये थे।

टेलीफ़ोन के मूल सिद्धान्त पर थोड़ा प्रकाश डाला जा चुका है किन्तु अभी कुछ और बतलाना आवश्यक है। जो शब्द हम बोलते हैं उससे हम वायु-मण्डल में कम्पन उत्पन्न कर देते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि ढेले फैंकने से तालाब में तरङ्गें उत्पन्न हो जाती हैं। यह कम्पन दूसरे मनुष्य के कान तक पहुँच कर उसके कान की झिल्ली पर आघात पहुँचाते हैं

और शब्द सुनाई पड़ने लगता है।

शब्द के तरङ्ग-रूप होने की कल्पना वैशेषिक आदि शास्त्रों में भी है। शब्दप्रसार 'वीचि-तरङ्ग न्याय' से बतलाया गया है। बात करने या घण्टी बजने से पास की वायु में तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। वे तरंगें कान की झिल्ली पर आघात कर स्नायुओं (Nerves)
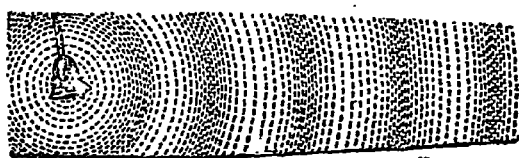
शब्द की तरंगें

द्वारा मस्तिष्क में कम्पन उत्पन्न कर शब्द का ज्ञान करा देती हैं। (शब्द की तरंगों का चित्र देखिए) जब तोप चलती है, अथवा ज़ोर से बाजे बजते हैं, तब शब्द के बल से बर्तन वग़ैरह हिलने लगते हैं। तोप के शब्द में अधिक बल होता है। वायु-मण्डल में उच्चारण किये हुए शब्दों द्वारा जैसी तरङ्गें उत्पन्न की जाती हैं वैसी ही तरङ्गें यदि और किसी प्रकार से उत्पन्न की जा सकें तब भी शब्द सुनाई पड़ेगा। टेलीफ़ोन के प्रेषक (Transmitter) द्वारा बोले हुए शब्द विद्युत्-धारा (Electric Current) की सहायता से ग्राहक (Receiver) के भीतर की लोहमयी पतली चैंदी (Disc) में वैसे ही कम्पन उत्पन्न कर अपने प्रतिरूप शब्द उत्पन्न कर देते हैं। पहले लोग यह समझते थे कि टेलीफ़ोन का तार पोला होता है, उसमें होकर आवाज़ चली जाती है। वास्तव में दूसरे छोर पर नयी आवाज़ बनती है।

बिजली की धारा इस कार्य में किस प्रकार सहायक होती है? जिस समय टेलीफ़ोन के प्रेषक द्वारा बात की जाती है, मनुष्य के मुख से निकले हुए शब्द प्रेषक के पतले पत्तर में

कम्पन उत्पन्न कर देते हैं। प्रेषक में उसी पत्तर से मिले हुए कारबन (Carbon) के महीन कण रहते हैं। पत्तर के दबने और उठने से कार्बन के कण इकट्ठे हो जाते हैं या बिखर जाते हैं। जब वे इकट्ठे होते हैं तब रुकावट कम होने के कारण उनमें से गुजरने वाली विद्युत्-धारा का बल बढ़ जाता है और वह दूसरी ओर ग्राहक की चैंदी को विद्युत्-चुम्बक के आकर्षण से अधिक बल के साथ. आकर्षित करने लग जाती है, और जब दबाव हलका होता है तब उसका आकर्षण कम हो जाता है। इस प्रकार ग्राहक का पत्तर हिलने लगता है और शब्द उत्पन्न हो जाता है।
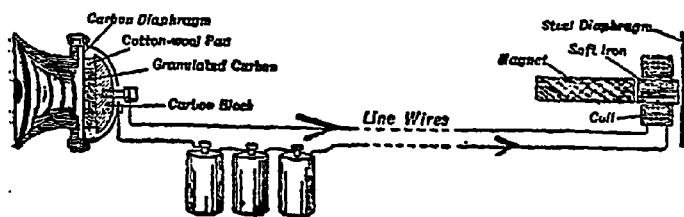
टेलीफ़ोन की बनावट

जब हम किसी से बात करना चाहते हैं तब हम 'डायरेक्टरी' में उसका नम्बर देखकर टेलीफ़ोन का ग्राहक कान से लगाते हैं और प्रेषक द्वारा एक्सचेंज को (वह दफ्तर जहाँ पर एक नम्बर का दूसरे नम्बर से मिलान किया जाता है) उस नम्बर से मिला देने का आदेश देते हैं। नम्बर मिलते ही दूसरे छोर पर घंटी बजने लगती है और जिससे हम बात करना चाहते हैं उसका ध्यान उस ओर आकर्षित हो जाता है। बड़े शहरों में ऐक्सचेंज को पुकारने की भी ज़रूरत नहीं होती, अब स्वतः चालित (Automatic) यंत्र बन गये हैं। जिस नम्बर से मिलान करना हो उससे अपने आप ही मिलान कर लिया जाता है। ऐसे

यंत्रों में एक घूमने वाला चक्कर लगा रहता है। उसमें दस गोल घेरे होते हैं, जिनमें कि एक से लगाकर नौ तक गिन्ती और एक शून्य होता है। जो नम्बर मिलाना हुआ उसके एक एक अंक के घेरे में क्रमशः उँगली डालकर घुमा देने से नम्बर अपने आप मिल जाता है।

स्वतः चालित टेलीफ़ोन

जब किसी दूसरे शहर से बातें करनी होती हैं तब ऐक्सचेंज की मदद लेनी पड़ती है। किसी दूसरे शहर से बातें करने को ट्रंक कॉल (Trunk Call) कहते हैं। इसका भिन्न भिन्न स्थानों के लिए अलग अलग रेट होता है। रात में या छुट्टी के दिन तार भेजने पर दूने दाम देने पड़ते हैं परन्तु टेलीफ़ोन के द्वारा ट्रंक कॉल से आधे रेट पर बात चीत की जा सकती है।

टेलीफ़ोन में लाउड स्पीकर (Loud Speaker) लगा देने से एक टेलीफ़ोन से बहुत आदमी सुन सकते हैं। अब टेलीफ़ोन में ऐसा भी प्रबन्ध हो गया है कि सुनने वाला न हो तो उसके पीछे एक तवे पर आवाज़ भर जाय और उसके लौटने पर वह आवाज़ फिर उसी तरह सुनी जा सके। टेलीफ़ोन में एक उन्नति यह भी होने की आशा है कि एक विशेष यंत्र लगा देने पर टेलीफ़ोन पर बोलने वाले एक दूसरे का चेहरा देख सकेंगे और उससे एक दूसरे की भावभङ्गी भी समझ सकेंगे।

अध्याय ७

आकाश-वाणी

'बेतार का तार'

वर्त्तमान युग के वैज्ञानिक चमत्कारों में तार-हीन आकाश-वाणी (Wireless) का चमत्कार सब से अधिक आश्चर्य-जनक है। इस यंत्र ने मनुष्य को वह शक्ति दे दी है जो पूर्व काल में योगियों को प्राप्त थी। बेतार के तार द्वारा मनुष्य की गति सारे संसार में हो गई है, केवल इतना ही नहीं वरन् अब तो मंगल-ग्रह (Mars) से भी सम्बन्ध स्थापित करने की आशा की जा रही है। आप तीन या साढ़े तीन सौ रुपये का एक रेडियो सैट (आकाशवाणी ग्राहक) ख़रीद लीजिए और ज़रा से समायोजन (Adjustment) अर्थात् घटा बढ़ा कर मिलान करने से आप कलकत्ता और बम्बई के गाने, किस्से कहानी, बाज़ार भाव और व्याख्यान और केवल कलकत्ता बम्बई के ही क्यों सात समुद्र पार इङ्गलैंड, इटली, फ्रांस, जर्मनी, आदि देशों के गायन और व्याख्यान भी अपने कमरे के भीतर बैठे बैठे सुगमता-पूर्वक सुन सकते हैं। अब आपको ग्रामोफ़ोन के नित नये रेकॉर्ड ख़रीदने की ज़रूरत नहीं। आपको नये-नये गाने और मनो-विनोद की बातें सुनने में आयँगी और आपका जी न ऊबेगा। कुछ दिनों पश्चात् तो आपको सिनेमा देखने की भी ज़रूरत न होगी और आपके कमरे की दीवाल पर ही संसार के रंग-मंचों के नाच-कूद, आमोद-प्रमोद और खेल तमाशे दिखलाई पड़ा करेंगे। दूर-दर्शन (Television) अब भविष्य का स्वप्न नहीं रहा वह अब दृढ़ वास्तविकता के क्षेत्र में आ गया है।

तार-हीन वाणी यद्यपि एक आदमी के मस्तिष्क की उपज नहीं (हमारे देश के विज्ञानवेत्ता सर जगदीशचन्द्र वसु का भी इसको व्यवहारिक रूप देने में बहुत कुछ हाथ था) तथापि इसका विशेष सम्बन्ध मारकोनी (Marooni)* नाम के इटली-निवासी युवक से है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि मारकोनी ने यह आविष्कार इक्कीस वर्ष की अवस्था में ही कर लिया था।

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, विना तार के संवाद भेजने की समस्या मारकोनी से पूर्व की है। एडीसन ने चलती हुई रेलों से आगे के स्टेशन को संवाद भेजने की तरकीब निकाली थी और इसके द्वारा वह पहले ही से अपने अख़बार की ख़बरों का विज्ञापन करा देता था। मोर्स ने भी पानी के माध्यम द्वारा संवाद भेजने की आयोजना की थी। दो अँङ्गरेज़ वैज्ञानिकों ने समानान्तर तारों के बीच के/आकाश द्वारा एक तार से दूसरे तार तक संवाद भेजना शुरू किया था। इसके लिए लम्बे तारों की आवश्यकता होती थी और शब्द चारों ओर नहीं जा सकता था। शब्द को संसार भर में व्याप्त करा देने का काम मारकोनी का ही है।

हमारे यहाँ पाँच तत्व माने गये हैं, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। देश (Space) बिलकुल शून्य नहीं है। वह वायु से भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म ईथर नाम के एक प्राकृत पदार्थ से व्याप्त माना जाता है। आजकल लोग ईथर को 'आकाश' बतलाते हैं। प्रकाश ईथर की ही तरङ्गों द्वारा हमारे पास आता है। ईथर की तरङ्गों का वेग वायु की तरङ्गों से तीव्रतर है। (प्रकाश का वेग १८६४०० मील फी सेकिंड है और शब्द का वेग ३५७ गज़ फी सेकिंड है) बिजली की चमक

* जन्म २१ अपरैल १८७४।

जो ईथर की तरङ्गों द्वारा आती है हमको पहले दिखलाई पड़ती है और गरज जो वायु की तरङ्गों द्वारा आती है पीछे सुनाई पड़ती है। जैसे जैसे हम ऊपर जाते हैं, वायु-मण्डल सूक्ष्म होता जाता है, किन्तु ईथर सारे विश्व में एक रस व्याप्त रहता है, इस कारण अरबों मील तक के तारागणों की रोशनी हम तक आजाती है।

दूर तक संवाद भेजने की स्वाभाविक इच्छा तथा वायु द्वारा उस इच्छा की अपूर्ति के भाव को कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त ने बालक राहुल (बुद्धदेव का पुत्र) और उसकी माता यशोधरा की वार्तालाप द्वारा बड़े सुन्दर शब्दों में बतलाया है।

राहुल
अम्ब! मेरी बात कैसे तुझ तक जाती है?
यशोधरा
बेटा वह वायु पर बैठ उड़ आती है।
राहुल
होंगे जहाँ तात क्या न होगा वायु माँ, वहाँ?
यशोधरा
बेटा जगत्प्राण वायु, व्यापक नहीं कहाँ!
राहुल
क्यों अपनी बात वह ले जाता वहाँ नहीं?
यशोधरा
निज ध्वनि फैल कर लीन होती है यहीं।
राहुल
और उनकी भी वहीं? फिर क्या बड़ाई है?

यह संवाद वायु द्वारा तो नहीं किन्तु आकाश की विद्युत्-चुम्बक तरङ्गों द्वारा अवश्य पहुँचाया जा सकता था।

हमारे यहाँ दार्शनिकों ने शब्द को आकाश का गुण माना है, यह बात आज कल के विज्ञान के प्रतिकूल अवश्य पड़ती है किन्तु इस सिद्धान्त में तार-हीन संवाद की भावी सम्भावना छिपी हुई थी। तार-हीन संवाद आकाश की तरङ्गों द्वारा ही भेजे जाते हैं। यद्यपि क्लार्क मैक्सवैल (Clerk Maxwell) नाम के अँगरेज़ विज्ञानवेत्ता ने सिद्धान्तरूप से प्रमाणित कर दिया था कि प्रकाश ईथर की विद्युत्-चुम्बक (Electrio Magnatic) तरङ्गों द्वारा हमारे पास तक आता है, तथापि ईथर की इन तरङ्गों से काम लेकर उनको प्रयोगात्माक रूप से सिद्ध करने का श्रेय हर्ट्ज (Hertz) को था। उसने यह प्रमाणित करके दिखला दिया कि ईथर में ऐसी विद्युत्-चुम्बक तरङ्गें उत्पन्न की जा सकती हैं जो कि स्वर (Pitch) और प्रवेश शक्ति के सिवाय और सब बातों में प्रकाश की तरङ्गों के समान हों। ये तरङ्गें एक सेकिण्ड में पृथ्वी के चारों ओर का आठ मर्तबा चक्कर लगा सकती हैं।

एक रोज़ प्रयोग करते हुए हर्ट्ज़ को यह पता चला कि विद्युत्-प्रवाह संग्रह करने वाला लीडन-जार(Leyden Jar)जब एक कुंडली (Coil) द्वारा खाली किया जाता है तब यदि कुछ दूरी पर रक्खी हुई दूसरी कुण्डली के छोरों का अन्तर बराबर हो तो एक कुण्डली की चिंगारी (Spark) दूसरी कुण्डली द्वारा भी (वह कुण्डली यदि बहुत दूर न हो) निकलती हुई दिखलाई पड़ेगी। यह इसी प्रकार होता है जिस प्रकार कि दो सारङ्गियाँ या सितार एक से मिला कर रख दिये जाते हैं और एक से किया हुआ शब्द दूसरे में अपने आप निकलने लगता है। थोड़ी दूर के लिए तो ये वाद्य भी 'बेतार के तार' बन जाते हैं। यदि दोनों सितार या सारङ्गी एक से न मिले हों तो एक का स्वर दूसरे से नहीं निकलेगा। बेतार के तार की विद्युत-चुम्बक तरङ्गें सारी पृथ्वी में प्रकाश की तरङ्गों के समान एक दम व्याप्त हो जाती हैं और सूक्ष्म ग्राहक यंत्रों द्वारा अपना

मारकोनी

प्रभाव दिखला सकती हैं। वायु की तरङ्गें बहुत दूर तक नहीं जाती हैं इसीलिए वे वायु में ही लीन हो जाती हैं।

मारकोनी जब बारह वर्ष का ही था तभी उसने अपने गुरु देव से हर्ट्ज़ की विद्युत्-तरङ्गों के बारे में सुना था। उसकी बाल कल्पना चपल हो उठी। वह हर्ट्ज़ के प्रयोगों को दुहराने लगा और इन तरङ्गों का विशेष अनुसंधान करना इसके जीवन का लक्ष्य बन गया। वह एक सच्चे भक्त की संलग्नता के साथ अपने लक्ष्य की पूर्ति में जुट गया। जब कि और बालक खेल कूद में समय बिताते थे, वह संसार को चकित कर देने वाली योजना का स्वप्न देखता था किन्तु उसका स्पप्न शेखचिल्ली का सा स्वप्न न था। मारकोनी में सच्चे वैज्ञानिक की लगन थी, उसी के अनुकूल उसमें परिश्रम और अध्यवसाय था। उसने अपने बाप के बग़ीचे के दोनों ओर एक एक खम्भा गाढ़ कर उनके ऊपरी छोरों में टीन के पतरे लगा दिये और इस प्रकार उसने एक प्रेषक (संवाद भेजने वाला) आकाशी (एरियल) और दूसरा ग्राहक (संवाद लेने वाला) आकाशी बना लिया। (आजकल दो ऊँचे खम्भों में तार बाँध कर आकाशी बना लिया जाता है, ऐसे एरियल बहुत सी कोठियों के ऊपर लगे हुए दिखलाई पड़ेंगे)। इनके द्वारा संकेत भेजने और ग्रहण करने में मारकोनी को सफलता हुई।

मारकोनी के लिए संवाद भेजने की अपेक्षा उसका ग्रहण करना कठिन कार्य था। विद्युत्-चुम्बक तरङ्गों से मोर्स के यंत्र को प्रभावित करने में विशेष कौशल की आवश्यकता थी किन्तु उसने अपने अध्यवसाय के कारण लक्ष्य में सफलता प्राप्त करली और सन् १९०१ में बड़ी कठिनाइयों का सामना कर पतङ्ग के एरियल की सहायता से मोर्स के संकेतों को एटलांटिक महासागर के आर पार भेजने में समर्थ हुआ।

यद्यपि तार-हीन संवाद के प्रारम्भिक काल में मोर्स के

यंत्रों को प्रभावित कर लेना ही बड़ी बात थी तथापि मनुष्य की वाणी को विना तार के स्थानान्तरित करने वाले आजकल के रेडियो यंत्रो के आगे केवल 'गर गट्ट' का संकेत करने वाले यंत्रों का महत्व बहुत कम है। संकेतों में मनुष्य की वाणी का उतार चढ़ाव और लोच कहाँ? इस के लिए बड़े सूक्ष्म यंत्रों की आवश्यकता हुई। आजकल ग्राहकों में कपाटिकाओं (Valves) से जो कि बिजली की बत्तियों की भाँति होती हैं विद्युत्-चुम्बक तरङ्गों को प्रभावयोग्य बनाने का काम लिया जाता है। इन कपाटिकाओं द्वारा तरङ्गों की शक्ति का विस्तार भी किया जाता है। यदि परिप्रेषण स्थल (Broadcasting Station) दूर होता है तो अधिक कपाटिकाओं वाला यन्त्र ख़रीदना पड़ता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रेषण-स्थल पर मनुष्य की वाणी से उत्पन्न हुई शब्द-तरंगें वहाँ से चलाई हु ई विद्युत् चुम्बक तरङ्गों में वैविध्य (Variations) उत्पन्न कर देती हैं। ये तरंगें आकाश में फैल जाती हैं और एरियल द्वारा पकड़ी जाकर ग्राहक यंत्रों से एक नवीन शक्ति पाकर वायु में वैसे ही कम्पन उत्पन्न कर देती हैं जैसे कि मनुष्य की वाणी से होते हैं। टेलीफ़ोन में भी प्रायः यही बात होती है किन्तु टेलीफ़ोन की विद्युत् तरंगें तारपर होकर चलती हैं, ये तरंगें आकाश में होकर आती हैं।

अब तो रेल, जहाज़ और मोटरों तक में मारकोनी के सैट दिखलाई पड़ते हैं। जहाज़ों को भिन्न भिन्न देशों का संवाद पाने के अर्थ किनारे तक पहुँचने की बाट नहीं देखनी पड़ती। जहाज़ में रोज़ के रोज़ नहीं वरन् घण्टे-घण्टे पर ताज़ा समाचार मिल जाते हैं। उड़ाकू लोग भी व्योम-विहार करते हुए ज़मीन से सम्बन्ध रख सकते हैं। डूबते हुए जहाज़ अपने संकट का संवाद दूसरे जहाजों तक भेज कर अपने यात्रियों की

प्राणरक्षा कर सकते हैं। आप घर बैठे दूर देशों का गाना सुन सकते हैं। उसके लिए केवल मिलान करने की आवश्यकता होती है। हर एक प्रेषक स्थान (Sending Station) भिन्न-भिन्न दीर्घता की तरंगें भेजता है जिससे कि उसका व्यक्तित्व बना रहे। यदि ऐसा न हो तो सब जगहों के संवाद एक-दूसरे से मिल जायँ और कुछ सुनाई न पड़े। प्रत्येक प्रेषक स्थान की तरंग-दीर्घता (Wave Length) मालूम रहती है और खबर भेजने का समय भी अखबारों में छपा रहता है कि किस समय कहाँ से गाना या व्याख्यान का परिप्रेषण (Broadcasting) किया जायगा अर्थात् चारों ओर भेजा जायगा।

हिन्दुस्तान में कलकत्ते, बम्बई और देहली से परिप्रेषण होता है उनकी तरंग-दीर्घताएँ अखबारों में कार्यक्रम के साथ छपी रहती हैं। अखबारों में निर्दिष्ट समय पर अपने रेडियो सेट का उसी दीर्घता के अनुकूल मिलान कर लीजिए और आराम से इष्ट मित्रों और बन्धु-बान्धवों के साथ वहाँ से भेजे हुए गाने और संवाद सुनते रहिए। ये तरंगें 'रेडिएट' अर्थात् विकीर्ण होकर आती है, (जैसे कि आग की गर्मी हमारे पास आती है) इसलिए इनसे सम्बन्ध रखने वाले यन्त्र रेडियो सेट (Radio Set) कहलाते हैं। रेडियो सेट रखने वाले को डाकखाने में १०) रु० प्रतिवर्ष जमा करने पड़ते हैं।

अध्याय ८

रॉञ्जन किरण

बिजली के चिकित्सा-सम्बन्धी प्रयोगों में रॉञ्जन किरणों (ऐक्स-रेज़) का बड़ा महत्त्व है। अब इनके कारण शल्य-चिकित्सा (जर्राही) अँधे की टटोल नहीं रही। गले या पेट के भीतर कील या पैसा अटक जाय तो उसके स्थान को निश्चित करने में अनुमान की आवश्यकता नहीं होती। शरीर के भीतर की अगोचर हड्डियों का भी 'हस्तामलकवत्' चाक्षुष प्रत्यक्ष हो सकता है और काठ के बक्स को खोले बिना ही उसके भीतर रक्खे हुए आभूषणों को हम देख सकते हैं। ये अपार-दर्शक (Opaque) पदार्थों में प्रवेश करने वाली किरणें अपने आविष्कारक के नाम पर रॉञ्जन किरण (Rontgen Rays) कहलाती हैं। इनका ठीक ठीक हाल न मालूम होने के कारण इनका नाम 'एक्स रेज़' (X Rays) रक्खा गया था; क्योंकि बीज गणित में जो बात अज्ञात होती है उसे प्रायः (X) मान लेते हैं।

यद्यपि 'अदृश्य प्रकाश' कहना एक वदतो-व्याघात (कही हुई बातका काटना)साप्रतीत होताहै तथापि कुछ ऐसा प्रकाश है जोहमारी आँखों को नहीं दिखलाई देता किन्तु उसका प्रभाव फ़ोटोग्राफ़ी की प्लेटों पर अथवा अन्य प्रतिदीप्त* (Flourescent) पदार्थों पर

---

* प्रतिदीप्त पदार्थ वे कहलाते हैं जो एक प्रकार के प्रकाश को अपने में जज़्ब करके दूसरी प्रकार की रोशनी देते हैं। हमारे देश के उज्ज्वल रत्न सर सी० वी० रमन ने इस प्रकार के पदार्थों के सम्बन्ध में बड़ी महत्वपूर्ण खोज की है।

दिखलाई पड़ता है। एक्सकिरणों का भी ऐसा ही प्रकाश है। इस तरह की किरणों की खोज का श्रेय जर्मनी-निवासी प्रोफेसर रॉञ्जन को है।

कोई आविष्कार टूटते हुए तारे की भाँति एक साथ आकाश से नहीं गिर पड़ता। प्रत्येक आविष्कार पूर्व की खोजों और आविष्कारों से विकसित होता है। एक्स किरणों के आविष्कार के पूर्व बहुत कुछ खोज हो चुकी थी।

पाठकगण जानते हैं कि जब किन्हीं विद्युत् तारों के सिरे एक दूसरे के निकट लाये जाते हैं तब उनके अन्तर में थोड़े शब्द के साथ बिजली की चिनगारियाँ (Sparks) निकलने लगती हैं। अगर तारों के सिरे एक दूसरे से बहुत दूर पर कर दिये जायँ तो इन चिनगारियों का निकलना बन्द हो जाता है। यह हवा की अवरोधकता के कारण होता है। यदि एक काँच की नलिका के भीतर से हवा धीरे धीरे निकालते जायँ तो हवा की अवरोधकता क्रमशः कम होती जाती है और उसी के साथ बिजली रेखा के रूप में बहने लगती है।

सर विलियम क्रुक्स (Sir William Crooks) ने नलिकाओं को हवा से शून्य करने में बड़ी सफलता प्राप्त की। उनकी बनाई हुई शून्य नलिकाओं (Vaccum tubes) में रक्खे हुए विद्युत् तारों के छोर के अन्तर में बिजली के प्रकाश का एक चमकदार सूत्र सा बन जाता है। हवा जैसे पतली होती जाती है इस सूत्र का रूप बदलता जाता है और अत्यन्त पतली हो जाने पर ऋणोद (Cathode) किरणें निकलने लगती हैं। (साधारणतया बिजली की चिनगारियाँ धन की ओर से ऋण की ओर जाती हैं, बिजली धन से ऋण की ओर ऊँचे से नीचे की ओर जाती है किन्तु इस अवस्था में ऋण की ओर से धन की ओर जाती है) ऋणोद किरणों के रास्ते में रक्खे हुए लवण

रंग-बिरंगे प्रकाश से चमकने लगते हैं। इसी प्रकाश के साथ रॉञ्जन किरणें भी निकलती हैं। वे इतनी मंद होती हैं कि उनसे प्रयोग करने में बड़ी देर लगती है। परन्तु ऋणोद के छोर वाले पत्तर को नतोदर (भीतर की ओर झुका हुआ) बना देने से उससे निकली हुई किरणें धन की ओर लगे हुए धातुमय पतरे पर एकत्रित हो जाती हैं और वहाँ से बहुत तीव्र रॉञ्जन किरणें निकलने लगती हैं।
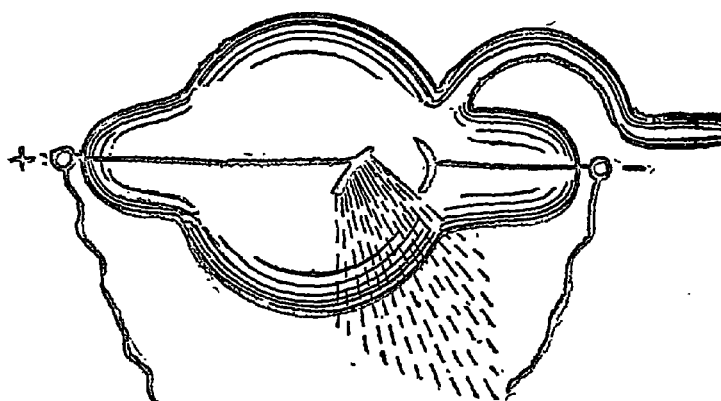
रॉञ्जन किरण नलिका

प्रोफ़ेसर रॉञ्जन को फिर यह भी पता लगा कि ये किरणें यदि किसी प्रतिदीप्त (Flourescent) पदार्थ के बने हुए पर्दे पर पड़ती हैं तो उसको एक सा दीप्त कर देती हैं। यदि उनके बीच में कोई रुकावट की चीज़ रक्खी जाय तो उसकी छाया पर्दे पर पड़ने लगती है। जब एक्स किरण ट्यूब से निकली हुई किरणों और पर्दे के बीच में कोई हाथ रक्खा जाता है तो वे किरणें हाथ की खाल और माँस को पार कर जाती हैं किन्तु हड्डियों से पार होने में बहुत मन्द हो जाती हैं। इस प्रकार पर्दे
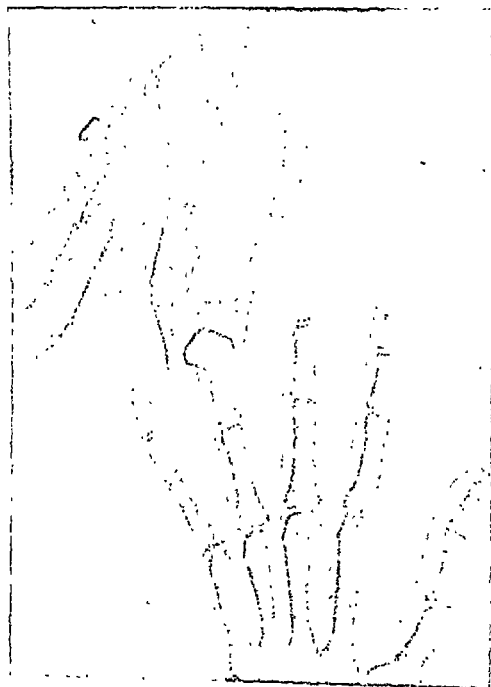
अँगुली में अँगूठी पहनाते हुए हाथ का एक्सरे द्वारा फ़ोटो

पर उँगलियों की छाया आ जाती है। यदि इस प्रकार काठ का बक्स रक्खा जाय तो वे किरणें काठ में होकर निकलने में कम मंद होंगी और रुपये पैसे और आभूषण आदि में होकर निकलने में अधिक मंद हो जायँगी और उनकी छाया पर्दे पर आ जायगी। यदि पर्दे के बीच में फ़ोटोप्लेट रक्खी जाय तो जहाँ प्रकाश की किरणें तीव्र पड़ेंगी वह स्थान अधिक काला हो जायगा और जहाँ मंद पड़ेंगीं वह स्थान कम काला होगा और इस प्रकार प्रकाश चित्रण की एक उल्टी प्लेट (Negative) बन जायगी और उसके छापने से हड्डियों या अन्य सख्त चीज़ों का चित्र आ जायगा।

एक्स किरण केवल डाक्टरों के ही काम की चीज़ नहीं है वरन् जौहरियों के लिये भी बड़ी उपयोगी है। इसके द्वारा सच्चे और झूठे हीरे की पहिचान हो जाती है।

अध्याय ६

बिजली के अन्य प्रयोग

बिजली के कुछ महत्व पूर्ण प्रयोगों का दिग्दर्शन करा दिया गया है किन्तु इनके अतिरिक्त बहुत से और प्रयोग हैं जिनका हमारे जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। अब बिजली के उन प्रयोगों के बारे में भी कह देना आवश्यक है। बिजली का जो व्यापक प्रयोग देखने में आता है वह रोशनी का है। एक बटन दबाने से सारा शहर का शहर आलोकित हो जाता है। बिजली की रोशनी के लाभों में स्वास्थ्यसम्बन्धी लाभ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कमरे में लम्प या चिराग़ जलता है तो उससे हवा की ओषजन (Oxygen) वायु ख़र्च हो जाती है। हवा की ओषजन हमारे प्राण धारण करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि उससे हमारे रक्त का शोधन होता है। बिजली की रोशनी को भी यद्यपि साधारण भाषा में जलना कहा जाता है, तथापि बिजली इस अर्थ में नहीं जलती कि उसमें ओषजन का व्यय हो। ओषजन प्राणद वायु कहलाती है और वह जितनी अधिक मात्रा में मिल सके उतना अच्छा है। बिजली की रोशनी को व्यावहारिक प्रयोग के योग्य बनाने में प्रसिद्ध एडीसन का बहुत हाथ है।

बिजली की रोशनी का यह सिद्धान्त है कि यदि वह किसी प्रतिरोध (Resistence) करने वाली चीज़ में होकर जाय तो अधिक गर्मी उत्पन्न हो जाती है और वह वस्तु दीप्त हो जाती है।

इस सम्बन्ध में प्रधान समस्या यह थी कि प्रतिरोध भी हो और वह इतना न हो कि बिजली का बिलकुल अवरोध हो जाय और

बल्ब

यह प्रतिरोधक माध्यम भी इतना कमजोर न हो कि जल जाय या गल जाय। इसके लिए पहले कार्बन का व्यवहार किया जाता था किन्तु अब टंगस्टन (Tungston) आदि धातुओं का प्रयोग होने लगा है। बिजली के बल्ब अब भारत में भी बनने लगे हैं। आगरे में भी इस की एक कम्पनी खुली है जिसका कारखाना शिकोहाबाद में है।
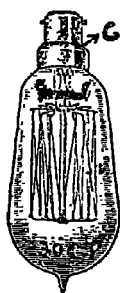
बिजली के और भी बहुत से प्रयोग हैं। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ पर कि बिजली की व्यापकता दिखलाई न दे। बिजली की अँगीठियाँ और पंखे मनुष्य को शीतोष्ण के द्वन्दों से बचाए रखते हैं। जाड़ों के दिनों में बिजली की गरम हवा द्वारा बाल सुखाने के छोटे-छोटे यन्त्र भी नाइयों की दुकान में प्रायः देखे जाते हैं। बिजली की इस्त्री से सहज में कपड़ों पर लोहा या इस्त्री की जा सकती है।

बिजली की अँगीठी

ठण्डे देशों में, जहाँ सूर्य देव के दर्शन भी कठिनाई से होते हैं, बिजली की धूप तक उत्पन्न करली जाती है। चित्र
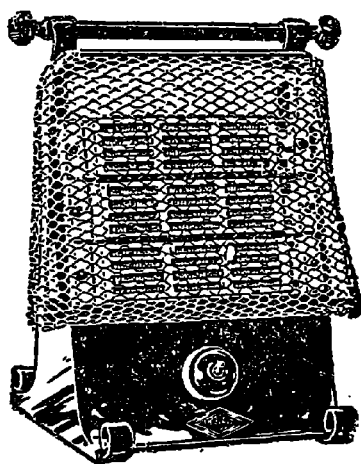
में देखिए कि बालक कैसे आनन्द से कृत्रिम धूप का सेवन कर रहा है।

कृत्रिम धूप का सेवन

जाड़ों में नल से गरम पानी मिल सकता है। बड़े बड़े शहरों में बिजली से मकानों में झाडू दे दी जाती है। बिजली की घण्टी तो थोड़े ही व्यय से बहुत काम देती है। किसी के घर जाओ तो बिजली का बटन दबाते ही उसे भीतर खबर हो जायगी कि कोई आया है। गला फाड़ कर असभ्यतापूर्वक आवाज़ लगाने की ज़रूरत ही नहीं रही। कहीं कहीं तो बटन दबाने की भी आवश्यकता नहीं होती। दरवाज़े पर पैर रखते ही घंटी बजने लगती है। होटलों में जिस कमरे में घण्टी बजाई जावे नौकर को खबर हो जाती है कि अमुक कमरे से पुकार हुई। आग लगने पर खतरे की घण्टी से आग बुझाने वालों को खबर दी जाती है। अब तो ऐसा भी प्रबन्ध हो गया

है कि घर में चाहे कोई हो या न हो, आग की गरमी से बिजली की आग बुझाने की घण्टी बजने लगती है। गरम देशों में बिजली द्वारा खाने-पीने की चीज़ों को ठण्डा कर सुरक्षित किया जा सकता है। चित्र में हिमीकारक अर्थात् वस्तुओं को ठंडी करने वाली अल्मारी (Refrigator) देखिए। अल्मारी में फल, दूध, शाक भाजी रख कर प्लग द्वारा बिजली का सम्बन्ध कर दीजिए, थोड़ी देर में सब चीज़ें ऐसी ठंडी हो जायँगी मानो बर्फ़ में रक्खी गई हों।
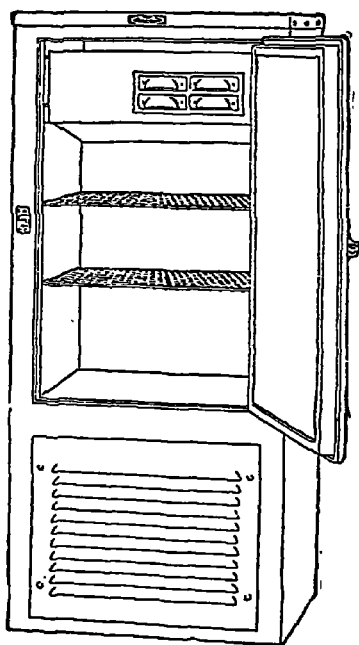
हिमीकारक

चोर से बचने के लिए अमेरिका आदि देशों में ऐसा प्रबन्ध रहता है कि चोर के खिड़की या दरवाज़े खोलते ही नज़दीक के थाने में घण्टी बजने लगती है। एक बार एक चोर ने अपने को बड़ा सयाना समझ कर बिजली का तार काट दिया किन्तु वह यह नहीं जानता था कि तार के टूटने से ही पुलिस को ख़बर हो जायगी। चोर तो निश्चिन्त भाव से चोरी कर रहा था और पुलिस ने घटनास्थल पर पहुँच कर उसको ऐन मौक़े पर पकड़ लिया। चोरी करने वाले का फ़ोटो भी गुप्त रूप से बिजली द्वारा स्वयं ही खिच जाता है।

चिकित्सा-शास्त्र में तो बिजली ने युगान्तर ही कर दिया है। बिजली की सहायता से बिना रुधिर निकले मांस काटा जा सकता है। आजकल यदि शाईलौक (Shylock) होता तो वह बिना खून निकाले मांस का एक पौण्ड काट लेता और पोरशिया की चतुराई निष्फल हो जाती। पर-बैंजनी किरणों (Ultra Violet Rays) से बहुत से रोगों का इलाज किया जाता है। बिजली की धारा से शरीर के दर्द भी दूर किये जाते हैं। एक्स किरणों से शरीर की टूटी हड्डियों का पता लग जाता है।

विद्युत-चुम्बक से बड़े-बड़े बोझ उठाये जाते हैं और रेत में से लोहा अलग किया जाता है। बिजली के ऊपर उठाने वाले खटोलों द्वारा, जिनको लिफ्ट (Lift) कहते हैं गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं में बिना परिश्रम के पहुँच जाते हैं। रेल के इंजनों के आगे बिजली के बड़े लैम्प लगाये जाते हैं, जिससे कि आता हुआ इंजन दूर से दिखलाई पड़ जाय।

बिजली के प्रयोग से कोयले के व्यवसाय को बहुत लाभ पहुँचा है। कोयले की खानों में गैस रहती है और किसी साधारण लम्प के प्रकाश से उनमें आग लग जाने का भय रहता है, बिजली के प्रकाश से मजदूर लोग सुभीते से काम करते रहते हैं। बिजली द्वारा ही खान से कोयला अलग किया जाता है। और भी अनेकों व्यवसायों को बिजली ने बहुत लाभ पहुँचाया है।

खेती में भी बिजली का प्रयोग होता है। बिजली के पम्प सहस्रों गैलन पानी बात की बात में बाहर फेंक देते हैं। बिजली की सहायता से पौधों को बढ़ने की शक्ति प्रदान की जाती है, इस प्रकार बिजली खाद का भी काम देती है।

अध्याय १०

रसायन शास्त्र और उसके प्रयोग

कोहनूर औ कोयला उभय अभेद बताया,
मिट्टी ही मणि, लाल, नील पुखराज सिखाया।
नीच ऊँच लघु महा एक सा कर दिखलाया,
ज्ञानी को समदर्शीपन का पाठ पढ़ाया।
जिसने रजकण औ सूर्य का एक मूल दरसा दिया,
जय विज्ञान-पयोद की, ज्ञानामृत बरसा दिया।
—गौड़

यूरोप के देशों में रसायन शास्त्र का उदय 'कीमिया' से हुआ। अंग्रेजी शब्द 'केमिस्ट्री', अर्बी 'अलकीमिया' से बना है। पहले लोग इस बात की धुन में थे कि किसी प्रकार से ताँबे या अन्य साधारण धातुओं से सोना बनालें। इस उद्योग में वे नाना प्रकार के रासायनिक प्रयोग करते रहे और यद्यपि उन लोगों को सोना बनाने की तरकीब न हाथ लगी तथापि उससे एक ऐसे विज्ञान का विकास हुआ जिसके द्वारा मनुष्य जाति के सुख में बहुत कुछ वृद्धि हुई है और जिसके द्वारा पृथ्वी पर साक्षात् कंचन बरसने लगा है। भारतवर्ष के लोगों ने भी रसायन शास्त्र में बहुत उन्नति की थी* किन्तु उन लोगों को सोना बनाने की इतनी चिन्ता न थी जितनी कि मनुष्य के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने की। उनकी रसायन-विद्या आयुर्वेद के अधीन थी। वे लोग भी सोना बनाने की खोज में रहे किन्तु

* डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय महोदय का लिखा हुआ हिन्दू रसायन-शास्त्र का इतिहास इस विषय में प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

वे रसायन से बने हुए सोने को खान से निकले हुए सोने से भिन्न मानते थे। अस्तु, यूरोप के लोग पहले चाहे जैसे रहे हों अब उन्होंने इस विज्ञान में पर्याप्त उन्नति करली है और हमारे यहाँ वह उन्नति रुक गई है।

रसायन शास्त्र क्या है इसका थोड़ा बहुत आभास करा दिया गया है। रसायन शास्त्र द्वारा भौतिक पदार्थों के योग और परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया के नियम निश्चित किये जाते हैं। यहाँ पर योग से केवल भौतिक मिलन का अर्थ नहीं है जैसे कभी नमक और शक्कर मिल जाते हैं। ऐसे मिलन में दोनों पदार्थों के गुण पृथक पृथक दिखलाई पड़ते हैं। रासायनिक योग में दो या अधिक पदार्थ मिल कर (मिलने वाले पदार्थों से भिन्न) एक विलक्षण पदार्थ उत्पन्न कर देते हैं। उदजन (Hydrogen) और ओषजन (Oxygen) मिलकर जल उत्पन्न हो जाता है, जो दोनों से भिन्न है। हमारे खाने का नमक भी सोडियम (Sodium) और (Chlorine) क्लोरीन नाम के दो पदार्थों से मिलकर बना है किन्तु यह दोनों से भिन्न है।

रसायन शास्त्र में वस्तुओं के परिवर्तनों का अध्ययन कराया जाता है किन्तु वह परिवर्तन दशा का नहीं है, जैसे कि पानी का भाप होजाना या भाप से फिर पानी होजाना अथवा पानी का बरफ़ बन जाना या बरफ़ का पानी हो जाना। इन दशाओं में पानी के रासायनिक योगों में अन्तर नहीं पड़ता। लोहा गरम करने से लाल हो जाता है किन्तु उसमें कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं होता। हाँ! लोहे पर जो काई लग जाती है वह रासायनिक परिवर्तन है क्योंकि काई लगने से उसमें ओषजन मिल जाता है। हिरमिची, जिससे रंग किया जाता है काई लगा हुआ लोहा ही है। जब कोई वस्तु जलती है तब भी रासायनिक परिवर्तन होते हैं। जलने के परिवर्तन की खोज से

रसायन शास्त्र में बड़ी उन्नति हुई है। पहले लोग माना करते थे कि सब जलने वाली चीजों में फ़िलोजिस्टन (Phylogiston) नाम का पदार्थ होता है जो जलते समय निकल जाता है। जब लोगों ने जले हुए पदार्थों को तोल कर देखा तो वे भारी पाये गये। इसकी व्याख्या करने के लिए फ़िलोजिस्टन मानने वालों ने कहा कि फ़िलोजिस्टन में ऋणात्मक भार होता है अर्थात् जिसमें यह पदार्थ होता है वह हलका हो जाता है और उसके निकल जाने से चीज भारी हो जाती है। लेवोइशियर (Lavoisier) ने, जिसका जन्म सन् १७४३ में हुआ था, जलने का ठीक ठीक रहस्य बतलाया।

बोयल (Boyle) ने जिसका जन्म १६२७ ई० में हुआ था तत्वों और यौगिक पदार्थों का अन्तर कर रसायन शास्त्र में एक नया युग स्थापित कर दिया। वही वर्तमान रसायन शास्त्र का जन्मदाता माना जाता है। उसने बतलाया था कि जल, वायु और पृथ्वी तत्व नहीं हैं वरन् कई चीजों के योग हैं। हमारे यहाँ भी आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी पाँच तत्व माने गये हैं किन्तु यह उस अर्थ में तत्व नहीं हैं वरन् भौतिक पदार्थों के प्रकार हैं। आजकल की परिभाषा में तत्व (Element) उसे कहते हैं जिसका और अधिक विश्लेषण न हो सके। पानी का हम उदजन (Hydrogen) और ओषजन (Oxygen) में विश्लेषण कर सकते हैं। शक्कर में कार्बन (Carbon) और उदजन आदि कई तत्व हैं, इसलिए ये तत्व नहीं हैं। चाँदी या सोने का चाहे जितना विश्लेषण किया जाय वे चाँदी या सोना ही रहेंगे। आजकल का रसायन शास्त्र नव्वे के क़रीब तत्व मानता है और अभी नये तत्व निकलते जाते हैं।

जॉन डाल्टन ने (John Dalton) जिसका जन्म सन् १३६६ में हुआ था परमाणुवाद (Atomic Theory) को निकाल कर

रसायन शास्त्र की उन्नति में बड़ा योग दिया है। उन्होंने बत-लाया कि सब तत्व बहुत सूक्ष्म परमाणुओं से बनते हैं। एक

जॉन डाल्टन

बूँद जल में अरबों परमाणु होंगे। भिन्न भिन्न तत्वों के परमाणु अपना अलग व्यक्तित्व रखते हैं। उनका भार भी अलग अलग होता है। ओषजन का एक परमाणु उदजन के परमाणु की

अपेक्षा सोलह गुना भारी होता है। कार्बन का परमाणु उदजन (Hydrogen) के परमाणु की अपेक्षा बारह गुना भारी होता है। इसके नियम निश्चित हैं। एक प्रकार के पदार्थों के योग में वे चाहे जिस तरह बनें, तत्त्वों का अनुपात एकसा ही रहता है। पीछे से इन परमाणुओं के मिलने के नियम भी नियत हो गये। हमारे यहाँ न्याय और वैशेषिक शास्त्र में परमाणु माने गये हैं। आज कल परमाणुवाद की कल्पनाओं में बहुत कुछ हेर फेर हो गया है। अब ये स्थूल नहीं माने जाते वरन् विद्युत् शक्ति के केन्द्र माने जाते हैं।

रसायन शास्त्र के कई विभाग किये गये हैं उनमें 'इनॉर्गेनिक' (Inorganic) अर्थात् निरवयवी पदार्थ सम्बन्धी और 'ऑर्गेनिक' (Organic) अर्थात् अवयवी पदार्थ सम्बन्धी मुख्य हैं। पहली प्रकार की रसायन का सम्बन्ध निर्जीव पदार्थों से है और दूसरी का सम्बन्ध सजीव पदार्थों और उनसे होने वाली चीजों से है। 'इनॉर्गेनिक' रसायन के अन्तर्गत धातुओं, नमक, खड़िया, तूतिया, सोरा, गन्धक आदि के अम्लों, ओषजन, उदजन आदि गैसों तथा उन सब वस्तुओं का जो जीवित पदार्थों से नहीं बने हैं, वर्णन आता है। तेल, शक्कर, आटा, शाक, कोयला, पेट्रोल आदि का अध्ययन 'ऑर्गेनिक' रसायन का विषय है क्योंकि इन चीजों का सम्बन्ध वनस्पति या जानवर आदि सजीव पदार्थों से है। अवयवी चीजों में हमेशा कार्बन का योग रहता है। इस कारण 'ऑर्गेनिक' रसायन को कर्बनित रसायन भी कहते हैं।

निर्जीव पदार्थों की रसायन से बहुत सी उपयोगी चीजें बनती हैं और उनका औषधियों और व्यवसाय की चीजों में बहुत प्रयोग हो रहा है। व्यवसाय की चीजों में चीनी मिट्टी और काँच का बनाना रसायन शास्त्र से अधिक सम्बन्ध रखता है।

काँच का बनाना बड़ा पुराना व्यवसाय है। भारतवर्ष में भी लोग इसे बहुत दिनों से जानते थे किन्तु आजकल अनेकों प्रकार के रंग-बिरंगे काँच बनने लग गये हैं। युक्त प्रान्त में काँच तैयार करने में फ़ीरोज़ाबाद ने बहुत उन्नति की है। चीनी मिट्टी का काम गवालियर, जबलपुर आदि नगरों में होता है।

सजीव पदार्थों की रसायन में शक्कर, शराब, काग़ज़, आदि का बनाना बड़ा महत्व रखता है। इनके अतिरिक्त नेफ़थलीन, फ़िनाइल, गिलीसरीन, साबुन, रंग आदि का बनाना सजीव पदार्थों की रसायन पर ही आश्रित है।

गिलीसरीन साबुन के व्यवसाय की गौण उपज है किन्तु बड़ा महत्व रखता है। इसका औषधियों में तो प्रयोग होता ही है किन्तु इसका अधिक प्रयोग विस्फोटक पदार्थों (Explosives) के बनाने में होता है। शोरे के तेज़ाबों में इसका एक विशेष योग देने से एक ऐसा विस्फोटक द्रव्य बनता था कि जिसका रखना या छूना मुश्किल होता था। एलफ्रेड नोबिल (Alfred Nobel) ने उसमें मिट्टी आदि मिलाकर उस में से डाइनामाइट (Dynamite) तैयार किया। यह डाइनामाइट युद्ध में तो काम आता ही है किन्तु बड़े-बड़े पहाड़ों के तोड़ने और जहाँ कुओं में पत्थर निकलता है पत्थर उड़ाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। डाइनामाइट की तैयारी से नोबिल को बड़ी आमदनी हुई। उसने इस आमदनी को जमा करके उसके सूद से चार वार्षिक पारितोषकों की आयोजना करदी है। हमारे देश के स्वनाम धन्य कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर को सन् १९१३ में आध्यात्मिक कविता के लिए यह इनाम मिला था। सर सी. वी. रमन को यही पुरस्कार विज्ञान के सम्बन्ध में मिला था।

नील का रङ्ग पहले खेती से प्राप्त होता था और भारतवर्ष में इसके बनाने की बड़ी-बड़ी कोठियाँ थीं। अब जर्मनी में यह रङ्ग

संश्लेषणात्मक रासायनिक क्रिया से बना लिया जाता है। किसी यौगिक वस्तु में से उसके योगों को अलग करना विश्लेषण (Analysis) कहलाता है और योगों को लेकर मिला देने को संश्लेषण (Synthesis) कहते हैं।

इस प्रकार बने हुए रङ्गों को संश्लिष्ट (Synthetic dyes) कहते हैं। इनमें ऐनेलीन (Aniline) का योग होता है। रासायनिक नील का रङ्ग पहले पहल जर्मन लोगों ने बनाया था। इसके सम्बन्ध में एक रोचक इतिहास है। इसके बनाने में एक ऐसी अवस्था आगई थी कि प्रतिक्रिया (Reaction) बहुत धीरे होती थी और उन रंगों की व्यापारिक सफलता की आशा न थी। संयोगवश उसमें एक थर्मामीटर टूट गया और प्रतिक्रिया बहुत जल्दी से होने लगी। यह पारे की उपस्थिति का कारण था। ऐसे बहुत पदार्थ हैं जो स्वयं कुछ नहीं करते हैं किन्तु उनकी उपस्थिति से काम होने लगता है। ऐसे प्रवर्तक पदार्थों को अँगरेज़ी में कैटेलिस्ट (Catalyst) कहते हैं। पारे के प्रयोगों से रंगों के बनने में बड़ी सफलता होने लगी।

रसायन शास्त्र ने व्यवसाय को बहुत उन्नति दी है। हमारे देश में रासायनिक द्रव्यों के आधुनिक ढंग से निर्माण के लिए कारखाने बनने लग गये हैं। इनमें सर प्रफुल्लचन्द्र राय* की स्थापित की हुई 'बंगाल केमीकल एण्ड फार्मेस्युटिकल' नाम की कम्पनी प्रमुख है। भारत में अभी ऐसी बहुत सी कम्पनियों की जरूरत है। सर प्रफुल्लचन्द्र राय का जीवन ऋषियों का सा त्यागमय जीवन है और वे विज्ञान के प्रसार में बहुत कुछ योग और प्रोत्साहन दे रहे हैं।

निर्जीव पदार्थों की रसायन में अम्लों का मुख्य स्थान है।

---

* इनका जन्म सन् १८६१ में हुआ था।

इन अम्लों में गन्धक का अम्ल (Sulphuric Acid) बहुत महत्व रखता है। आजकल तो इसके ख़र्च की मात्रा सभ्यता की कसौटी मानी जाती है। जिस देश में इस अम्ल का जितना व्यय होता है उतना ही वह सभ्य माना जाता है। गन्धक का अम्ल खेती में खाद के तौर पर, पेट्रोल की सफ़ाई में, बिजली से मुलम्मा (Electro-plating) चढ़ाने में, बिजली की संग्राहक बैटरियों (Accumulators) में, रंग बनाने में, विस्फोटक बनाने में, कपड़ों पर चिकनाहट देने आदि कार्यों में काम आता है। सुनार लोग सोने के संशोधन में शोरे के अम्ल (तेज़ाब) का अधिक प्रयोग करते हैं। शोरे के अम्ल में चाँदी गल जाती है सोना नहीं गलता है। इस प्रकार टाँके में लगी हुई चाँदी सोने से अलग की जा सकती है। रासायनिक प्रक्रिया से बहुत समय और श्रम बच जाता है। आजकल गन्धक का अम्ल कलकत्ता, कानपुर, बम्बई, गाजियाबाद आदि भारतवर्ष के कई नगरों में बनने लगा है। आगरे में भी गन्धक का अम्ल तथा अन्य रासायनिक द्रव्यों के बनाने का नेशनल कैमीकल एण्ड इण्डिस्ट्रियल कम्पनी नाम का एक कारख़ाना खुल रहा है।

गैसों में ओषजन, उदजन और कर्बन-द्वि-ओषिद (कार्बन डाइक्साइड) का विशेष प्रयोग होता है। इन सब में ओषजन का विशेष महत्व है। यह गैस जीवन देने वाली गैस समझी जाती है। मरते समय आयुर्वेद शास्त्र के अनुकूल जैसे रस दिये जाते हैं वैसे अँगरेज़ी चिकित्सा में ओषजन (Oxygen) का प्रयोग किया जाता है। जहाँ कहीं वायु दूषित हो जाती है तो उसको शुद्ध बनाने के लिए ओषजन का योग दिया जाता है। जिस प्रकार सहारा के रेगिस्तान में लोग पानी लेकर चलते हैं उसी प्रकार मौण्ट एवरेस्ट इंत्यादि की चढ़ाई करने वाले अपने साथ ओषजन रखते हैं, क्योंकि अधिक

ऊँचाई पर हवा पतली हो जाती है जिसके कारण वहाँ ओषजन की भी मात्रा कम हो जाती है। समुद्र के भीतर काम करने वाली पन-डुब्बी-नावों में और जहाँ कहीं शुद्ध हवा का प्रबन्ध न हो ओषजन बड़े काम की चीज़ है। मोती निकालने वाले गोताखोर भी इसे साथ रखते हैं।

हाइड्रोजन और ओषजन की अथवा एसिटिलेन (Acetylene) और ओषजन की लौ से बड़ा प्रबल ताप उत्पन्न होता है जो लोहा, प्लेटीनम आदि गलाने के काम आती है। ओषजन का आविष्कार प्रीस्टले (Priestley) ने सन् १७७४ में किया था। एक स्वीडन निवासी वैज्ञानिक ने भी इसका स्वतन्त्र रूप से आविष्कार किया था। भारतवर्ष में यह गैस बम्बई में बनती है। गुब्बारों में उद्जन गैस का बड़ा उपयोग होता है, यह सब से हलकी गैस है। भारतवर्ष में हाइड्रोजन गैस आगरे के अपर ऐयर आवजर्वेटरी (Upper Air Observatory) में बनती है। यहाँ से यह गैस लम्बी-लम्बी सिलिण्डरों में भरी जाकर दूसरे नगरों को भेजी जाती है।

सोडा वाटर आदि वायु-मिश्रित पेय पदार्थों में कार्बन डाइक्साइड बहुत काम में आता है। यह गैस आग बुझाने में भी बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। यह हवा से प्रायः डेढ़ गुनी भारी होती है। धातुओं में सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, शुद्ध धातु नहीं है। एलूमीनियम, (Aluminium) मेगनीज़ (Manganese) आदि धातुएँ मनुष्य के बड़े उपयोग में आती हैं। इन सबका शुद्धीकरण रसायन शास्त्र द्वारा ही होता है। हम एलूमीनियम के जो वर्तन देखते हैं वे सहज में नहीं बन जाते। एलूमीनियम को वर्तन बनाने योग्य बनाने में बड़ी रासायनिक क्रिया करनी पड़ती है।

अध्याय ११

मेडेम क्यूरी और रेडियम

प्रायः लोग पारिवारिक जीवन को उच्च प्रकार के अध्ययन और अन्वेषण में वाधक मानते हैं। रुचि-साम्य के अभाव में यह बात सत्य हो, किन्तु जहाँ रुचि-साम्य और सम्मिलित लक्ष्य होता है वहाँ पारिवारिक जीवन कलाओं और विद्याओं का आश्रय-स्थान बन जाता है। ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी धन और सम्पत्ति की परवाह न करके मनुष्य को अमर बनाने की शिक्षा चाहती है। मंडन मिश्र की स्त्री ने दिग्विजयी शंकराचार्य से लोहा लिया था। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें कि स्त्रियों ने अपनी प्रतिभा का परिचय न दिया हो। भवभूति ने ठीक ही कहा है कि "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः" अर्थात् "केवल गुनी को गुन पुजत नहिं रूप और नहिं वैस है"।

मेडेम क्यूरी उन्हीं स्त्री-रत्नों में से हैं जिन्होंने 'रेडियम' जैसे अमूल्य पदार्थ की खोज कर संसार को यह दिखला दिया है कि स्त्रियाँ परिवार के उचित क्षेत्र में रहते हुए भी विज्ञान जैसे गहन क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं। मेडेम क्यूरी का परिचय देने के पूर्व हमको उनके पतिदेव का परिचय देना आवश्यक है, क्योंकि विधाता ने दोनों को एक दूसरे के लिए ही बनाया था। पीरी क्यूरी (Pierrie Curie) (सन् १८५६-१९०६) पेरिस के डाक्टर क्यूरी के द्वितीय पुत्र थे। दोनों भाइयों को विज्ञान से स्वाभाविक प्रेम था। विज्ञान के अतिरिक्त

पीरी को संगीत-कला में भी रुचि थी। सन् १८८२ में पेरिस के एक व्यवसाय-सम्बन्धी विज्ञान सिखाने वाले मदरसे में उसको प्रयोगशाला के प्रधान का कार्य मिल गया। वहाँ पर उसने लेंगविन (Langevin) की अध्यक्षता में प्रयोगशाला के कार्य में बड़ी दक्षता प्राप्त करली। तेरह वर्ष तक वह अध्ययन और अध्यापन के कार्य में लगा रहा। उसके पिता कभी-कभी इस बात के लिए असन्तोष प्रकट करने लगते थे कि इतने दिन में भी वह डाक्टर का पद न प्राप्त कर सका। इसके लिए पीरी का एक ही उत्तर रहता था कि— 'इसकी कोई जल्दी नहीं है। मैं अपनी अवस्था से सन्तुष्ट हूँ।' उसे भय था कि पद में उन्नति होने से उसे अपनी गवेषणाओं के लिए पर्याप्त समय न मिलेगा।

मेडेम क्यूरी

पीरी को पद और आर्थिक उन्नति की महत्वाकांक्षा न थी। वह एक जीवन-संगिनी की तलाश में अवश्य था। विधाता ने उसकी सहधर्मिणी को पोलेण्ड में जन्म दे रक्खा था। यह 'मेरी स्क्लोडोक्सा' (Marie Sklodowska) थी। इस बालिका

का जन्म ७ नवम्बर सन् १८६७ में हुआ था। इसके पिता डाक्टर स्क्लोडिस्की विज्ञान के अध्यापक थे। उनके पास इतना धन न था कि वे अपनी निजी प्रयोगशाला की सफ़ाई के लिए कोई नौकर रख सकते। मातृहीना मेरी ही उनकी एक मात्र सहायिका थी। वह बड़े चाव से उनके सामान को परिष्कृत कर देती थी। धीरे धीरे वह उनकी प्रयोगशाला के यंत्रों के सम्बन्ध में कुछ समझने लगी, और वह उनके स्कूल में भी प्रयोगशाला की सहायिका बन गई। इस प्रकार उसे विज्ञान की पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो गई। पोलेण्ड में जारशाही थी और उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप कई आन्दोलन चल रहे थे। बालक, बालिकाएँ स्कूलों में रूस की भाषा के स्थान में छिप छिपकर अपनी देशी भाषा सीखतीं थीं। रूसी सरकार की ओर से दमन-नीति जारी थी। मेरी को पोलेण्ड से प्रेम था। वह शान्त वातावरण की खोज में पेरिस पहुँची। नगर के पूर्वी प्रदेश में उसने चौथे खन पर एक पिछला कमरा रहने को लिया। वहाँ उसे अपना कोयला और खाने-पीने का सामान स्वयं ही ऊपर चढ़ाकर ले जाना पड़ता था। वह अपना ख़र्च ट्यूशन से चलाती थी; पीछे से बोतलें धोने का काम भी उसे मिल गया था। लाल गूदड़ों में भी नहीं छिपते हैं। उसके कौशल और हस्तलाघव ने प्रयोगशाला के अध्यक्ष डाक्टर लिपमैन (Doctor Lippmann) का ध्यान आकर्षित कर लिया। डाक्टर महोदय द्वारा यह पीरी क्यूरी के सम्पर्क में आ गई, और अन्त में उन्होंने दोनों के गुरुजनों की आज्ञा प्राप्त करके सन् १८६५ में उनकी शादी करादी।

शादी होने से वे एक दूसरे को बड़ी संलग्नता के साथ सहायता देने लग गये। उनके जीवन का अन्तिम भाग प्रेम और सहनशीलता का था। ईश्वर ने उन्हें सन्तान भी दी, किन्तु

उनकी वैज्ञानिक खोज में किसी प्रकार की बाधा न पड़ी।

उन दिनों 'रॉञ्जन किरणों' (Rontgen Rays) की जिनको एक्सरेज़ (X Rays) भी कहते हैं, बड़ी चर्चा हो रही थी। इस सम्बन्ध में प्रतिदीप्त पदार्थों (Flourescent Substances) की जाँच होने लगी। क्यूरी-दम्पति के बेकरेल (Becquerel) नामक एक सहकारी को यूरेनियम (Uranium) के लवणों की जाँच करते हुए सहसा यह बात हाथ लगी कि 'एक्सरेज़' की भाँति उसके प्रकाश में भी अपारदर्शक पदार्थों में प्रवेश करने की शक्ति है। उसने फ़ोटोग्राफ़ी की स्लेटों के साथ यूरेनियम को एक पुड़िया में बाँधकर रख दिया था। स्लेटें काले काग़ज़ में लिपटी हुई थीं चित्र के व्यक्त करने वाले घोल (Developing Solution) में उन्हें डालने से मालूम हुआ कि बन्द रहते हुए भी स्लेटों पर प्रकाश का प्रभाव पड़ गया था। बेकरेल ने ऐसे पदार्थों की पहचान की एक सुगम रीति भी जान ली थी, वह यह कि ऐसे पदार्थ हवा में विद्युत् का प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं।

मेडम क्यूरी ने इस गवेषणा में और भी सफलता प्राप्त की। यूरेनियम पिचब्लेंड (Pitchblende) नाम के एक अर्द्धतरल पदार्थ से निकलता है। मेडेम क्यूरी को यह पता लगा कि इसके प्रकाश में अपारदर्शक पदार्थों को पार करने की शक्ति यूरेनियम से भी अधिक है। उसने सोचा कि यूरेनियम के अतिरिक्त कोई ऐसा पदार्थ है जिसमें यह शक्ति पर्याप्त मात्रा में है। यूरेनियम निकले हुए 'पिच' में भी यह शक्ति थी। मेडेम क्यूरी इस पदार्थ को पिच से पृथक करने में लग गई। और उसके पतिदेव भी अपनी निजी खोज को छोड़ कर इस कार्य में भाग लेने लग गये। यह कार्य ऐसा ही कठिन था जैसा कि मिट्टी के पहाड़ में से सोने का एक कण खोज लेना। उनके पास इतना धन न था कि अधिक मात्रा में 'पिच' खरीद

सकें। यह कठिनाई ऑस्ट्रिया की सरकार ने हल कर दी। उनके यहाँ बोहेमिया (Bohemia) में यूरेनियम की खानें हैं। उन्होंने यूरेनियम निकले हुए पिच का एक टन क्यूरी-दम्पति को दे दिया। इस समुद्र-मंथन से जो पहला रत्न निकला उसका नाम अपने देश-प्रेम के कारण मेडेम क्यूरी ने पोलोनियम (Polonium) रक्खा। पाँच वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् सन् १९०३ में मेडेम क्यूरी ने पेरिस की फैकल्टी ऑफ साइन्स के सामने अपनी रेडियम सम्बन्धिनी गवेषणाओं का फल उपस्थित किया और उसके लिए वे डाक्टर के पद से सम्मानित हुईं। उनका लेख छप जाने के पश्चात् उनका नाम सारे वैज्ञानिक जगत् में रेडियम की भाँति ही प्रकाशित हो गया।

मेडेम क्यूरी के परिश्रम का अन्दाज़ा इस बात से लग सकता है कि अमरीका में एक ग्राम (क़रीब एक माशा) रेडियम के प्राप्त करने में पाँच सौ आदमियों को छः मास तक काम करना पड़ा था। उसमें छः सौ टन (एक टन २८ मन का होता है) पिच दस हज़ार टन पानी से साफ़ किया गया था और उसमें एक हज़ार टन कोयला और पाँच सौ टन रासायनिक द्रव्य लगे थे। इसीलिए उसका मूल्य सोने से प्रायः हज़ार गुना है। संसार में रेडियम की मात्रा बहुत थोड़ी है (प्रायः ढाई छटाँक) किन्तु जितना है उतना क़रीब क़रीब अक्षय है। प्रकाश देने में उसका बहुत कम क्षय होता है। उसके क्षय होने में हज़ारों वर्ष लगेंगे। लोगों का ख़याल है कि सूर्य का प्रकाश भी रेडियम का सा ही है। सूर्य के चारों ओर 'हेलियम गैस' (रेडियम से निकलने वाली गैस) भी पाई जाती है।

रेडियम के कारण परमाणु सम्बन्धिनी कल्पनाओं में भी हेर फेर हुआ है। एक एक परमाणु शक्ति का भण्डार है

और उसमें विद्युत् अणुओं का एक सौर-परिवार सा भरा है। एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व में परिणत हो जाने का सुख-स्वप्न भी रेडियम द्वारा चरितार्थ होते दिखलाई पड़ता है। रेडियम का उपयोग घड़ी के 'डायलों' और 'स्विचों' पर तो होता ही है किन्तु इन गौण बातों के अतिरिक्त उससे मानव जाति को और भी अधिक लाभ पहुँचा है। रेडियम द्वारा नासूर का सफलता पूर्वक इलाज हो सकता है। पटना में रेडियम का अस्पताल है जिससे सैकड़ों मनुष्य प्रतिवर्ष लाभ उठाते हैं।

रेडियम जिस प्रकार उपयोगी है उसी प्रकार हानिकारक भी है। रेडियम के अधिक मात्रा में पास रखने से खाल जल जाने और घाव हो जाने का भय रहता है। प्रत्येक अच्छी वस्तु के साथ कुछ न कुछ बुराई भी लगी रहती है। निर्दोष तो परमात्मा ही है।

मेडेम क्यूरी दो वार नोविल पुरस्कार से सम्मानित हुई—एक वार बेकेरेल भी शामिल था। सच्चा परिश्रम निष्फल नहीं जाता। सन् १९३५ के विज्ञान का नोविल पुरस्कार मेडेम क्यूरी की पुत्री को मिला था।

अध्याय १२

शक्ति के भण्डार कोयला और पेट्रोल

संसार में कोई काम अपने आप नहीं हो जाता। जिस प्रकार भौतिक द्रव्य न बनता है और न घटता बढ़ता है उसी प्रकार शक्ति भी न पैदा होती है और न घटती बढ़ती है। एक प्रकार का भौतिक पदार्थ दूसरे प्रकार के भौतिक पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है। वैज्ञानिक के लिए घर में आग लगने से कोई नुक़सान नहीं होता है। वस्तुओं का आकार बदल जाता है किन्तु भौतिक पदार्थों की मात्रा उतनी की उतनी ही रहती है। कपड़े, लत्ते, मेज़, कुर्सी, जलकर ख़ाक हो जाते हैं किन्तु उनका शेष भाग वायु में मिल जाता है। पानी की भाप बन जाती है और भाप का फिर पानी बनता है, इसी प्रकार पानी की बर्फ़ बन जाती है। शक्ति का भी यही हाल है। जहाँ पर कोई कल पुर्ज़ा चलता दिखलाई पड़ता है उसके मूल में कोई शक्ति का स्रोत रहता है, चाहे वह किसी कमानी का, चाहे ऊपर से गिरते हुए पानी का, चाहे भाप का, चाहे बिजली का और चाहे गैस का हो। बिना इकट्ठी की हुई शक्ति के गति उत्पन्न नहीं होती है। जब एक जगह शक्ति का व्यय होता है तो दूसरी जगह उसका संचय होता है और संचित शक्ति फिर काम में लाई जाती है। मनुष्य छत के ऊपर चढ़कर हौज़ में पानी भर देता है, पानी में शक्ति का संचय हो जाता है और उससे फ़व्वारा चलता है।

दुनियाँ में सतत गति (Perpetual Motion) असम्भव है। आजकल जो बड़ी-बड़ी मिलें चल रही हैं, भारी-भारी

सामान उठाये जाते हैं, पंखे चलते हैं, मोटरें दौड़ी फिरती हैं, रेल और जहाज़ देश की सीमाओं को मिटाते रहते हैं, वे सव कोयले और पेट्रोल के खेल हैं।

वर्तमान समय में जो कोयला खानों से निकलता है वह भी प्राचीन युग के जंगलों का ही है। पृथ्वी के इतिहास में एक ऐसा युग था जब कि वड़े-वड़े विशाल-काय वृक्ष यहाँ मौजूद थे। वे चट्टानों के नीचे दव कर पृथ्वी के भीतर की अग्नि से कोयला वन गये। कोयले में अग्नि की शक्ति, तथा उन वृक्षों की शक्ति होती है जिनसे वह वनता है। यह शक्ति का रूप वदलता रहता है किन्तु शक्ति की मात्रा घटती नहीं वरन् संचित रहती है।

अव प्रश्न यह उठता है कि वृक्षों में शक्ति कहाँ से आई? वृक्षों में सूर्य के ताप और तेज की शक्ति भरी रहती है क्योंकि वे उसी से वढ़ते हैं और उसी के कारण पृथ्वी से खाद्य पदार्थ लेते हैं। अन्त में सव शक्ति का स्रोत सूर्य से मिलता है। इसीलिए सूर्य को सविता अर्थात् उत्पन्न करने वाला कहते हैं। सूर्य के तेज की शक्ति वृक्षों में संग्रहीत होती है, वृक्षों की शक्ति कोयलों में संचित रहती है। कोयले से गरमी उत्पन्न होती है। गरमी की शक्ति गति में परिवर्तित हो जाती है, इंजन की गति विजली की शक्ति में रूपान्तरित हो जाती है।

कोयला पृथ्वी के वहुत भीतर निकलता है। यह चट्टानों की तहों के नीचे मिलता है। कोयले की खाने प्रायः दो हजार हाथ गहरी होती हैं।

कोयले का व्यवसाय सहस्रों पुरुषों को आजीविका देता है। कोयले ने मैशेनरी के काम में वहुत सहायता की है और उसके वदले में मशीन ने भी कोयले के व्यवसाय में वहुत कुछ सहायता देकर अपना ऋण चुकाया है। आजकल कोयले की खानों में यद्यपि वहुत सा काम मशीन से ही होता है तथापि

वहाँ भी आदमियों के बिना काम नहीं चलता, क्योंकि जैसा-जैसा मशीन का काम बढ़ता है वैसे ही काम का विस्तार होता है और मनुष्यों की अधिक संख्या काम में लगती है। कोयले की खानों में ऐसी गैस रहती है कि जिसके पास कोई भी जलती हुई रोशनी के लाने से तुरन्त आग लग जाती है। बिजली के लम्पों ने अब इस कठिनाई को दूर कर दिया है। कोयले की खान में नीचे उतर कर काम करना सहज नहीं है। बिजली के खटोले में खड़े होकर दो ढाई हज़ार फ़ुट नीचे उतरना पड़ता है, उस गढ़े से चारों ओर को छोटी-छोटी गुफ़ाओं की सी सड़कें आती हैं, उनमें मनुष्य को झुककर चलना होता है। इनमें से भी कुछ सड़क की शाखाएँ निकलती हैं जिनमें कि मनुष्य को बिल्ली कुत्ते की भाँति घुटनों के बल चलना पड़ता है।

खान के भीतर बिजली का तार कोयला काटने की मशीन को चलाता है। वहाँ से कोयला अलग किया जाता है और इकट्ठा किया जाकर ऊपर पहुँचाया जाता है। कोयले का काम बड़े ख़तरे का है।

बिजली की रोशनी कपड़ों के कल कारखाने, सब इसी पृथ्वी के गर्भ से उपार्जित कोयले से चलते हैं। कोयले से कोल गैस बनती है जो कि यूरोप के देशों में ईंधन के तौर पर काम में लाई जाती है। यह गैस कोयले को गरम करने से निकलती है। तारकोल इसी से निकलता है। तारकोल से लकड़ी और लोहे पर काला रङ्ग किया जाता है। यह बड़ा छूत नाशक (Disinfactant) होता है। इसी से नेफ़थलीन की गोलियाँ, जो ऊनी कपड़ों में रक्खी जाती हैं, बनती हैं। यह बहुत से रंग और खुशबूदार पदार्थ बनाने के काम आता है। हमारा बहुत कुछ वैभव और ऐश्वर्य कोयले में काम करने वाले श्रम जीवियों पर निर्भर रहता है।

नल द्वारा पेट्रोल ऊपर चढ़ रहा है

भारतवर्ष में एक वर्ष में प्राय: २२,०००,००० टन (एक टन २८ मन का होता है) कोयला उत्पन्न होता है। सन् १९३२ में प्राय: छ: करोड़ रुपये का कोयला भारतीय खानों से निकला था, अमरीका में संसार से सबसे अधिक परिमाण में कोयला उत्पन्न होता है। कोयले की उत्पत्ति अमरीका की समृद्धि का मुख्य कारण है। जिस देश में जितना अधिक कोयला होता है उतना ही उसका व्यवसाय बढ़ जाता है। अभी संसार में इतना कोयला है कि वह कई सदी तक काम देगा। बिजली के आविष्कार से कोयले के खर्च में बहुत किफायत हो गई है और पेट्रोल तथा अन्य खनिज तेलों ने कोयले के खर्च को और भी कम कर दिया है।

भारतवर्ष में कोयला, रानीगञ्ज, झरिया, करनपुर, मध्य-प्रदेश के चाँदा और छिंदवारा जिले में, रीवा राज्य में उमरिया आदि की खानों में पाया जाता है। सिन्ध राज-पूताना आदि में भी थोड़ा बहुत कोयला मिलता है। झरिया का कोयला बहुत मशहूर है।

यहाँ पर तेल के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना अनुपयुक्त न होगा। पेट्रोल भी खान से निकलता है। अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि खान में यह कहाँ से आया? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का मत है कि यह तेल दबे हुए जानवरों अथवा तेल उत्पन्न करने वाले वृक्षों से निकल कर चट्टानों की तह में इकट्ठा हो गया है। पेट्रोल और उसकी गैस की तह के ऊपर चट्टान की एक मोटी तह रहती है जिससे पेट्रोल की गैस दबी रहती है, जब ऊपर की चट्टान में छेद किया जाता है तब गैस के दबाव के कारण तेल फव्वारे की तरह ऊपर उठता है, इस छेद में नल लगाकर पानी के नल की तरह तेल निकाल लिया जाता है। जब गैस का दबाव कम हो जाता है तब इसको

पम्प करके निकालना पड़ता है।

मिट्टी का तेल कई रूपों में निकलता है। जलाने का मिट्टी का तेल सफ़ेद, पीला, सभी प्रकार का, क्रूड आइल, जो आटे की चक्की आदि के इंजनों में काम आता है, मोबिल आइल, वैसलीन, पेरेफ़िन, आदि सभी मिट्टी के तेल के शुद्ध विकृत, पतले, गाढ़े रूप हैं। भारी तेल देर में उबलने के दर्जे तक पहुँचते हैं। हलके तेलों में जल्दी उबाल आ जाता है। पेट्रोल में सब से जल्दी उबाल आता है और आग लग जाने का भय रहता है। पेट्रोल को बिना गरम किये ही उससे गैस निकलती है। यही गैस हवा में मिल कर मोटर की सिलिण्डर में धड़ाका करती है। पेट्रोल के आविष्कार की बदौलत ही मोटर और हवाई जहाज़ सफल हुए हैं।

सन् १९३३ में दुनियाँ भर में उन्नीस करोड़ अस्सी लाख टन तेल खानों से निकाला गया था। इसमें से ६२ १/३ प्रति शत अमरीका ने दिया था। भारतवर्ष ने केवल ६२/१०० (यानी १०० में १ हिस्सा भी नहीं) दिया। तेल उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का बारहवाँ स्थान है। सन् १९३३ में भारतवर्ष में (बर्मा सहित) प्रायः छः करोड़ रुपये का तेल उत्पन्न हुआ था। भारत-वर्ष में बर्मा, आसाम और उत्तर पंजाब में तेल उत्पन्न होता है। भारतवर्ष, रूस, ईरान आदि देशों में भी तेल के अच्छे क्षेत्र हैं।

कोयले की अपेक्षा तेल बहुत उपयोगी है। यह थोड़ी जगह घेरता है और इसका प्राप्त करना भी कठिन नहीं है, किन्तु संसार में कोयले की अपेक्षा तेल की मात्रा कम है। इसीलिए लोग महुए, शीरे आदि से शक्ति का स्रोत तैयार करने के उद्योग में हैं।

अध्याय १३
बैसीमर और फ़ौलाद

आजकल फ़ौलाद का युग है। जिधर देखो उधर फ़ौलाद का ही बोलबाला है। संसार के बड़े बड़े पुल, रेल की पटरियाँ, जहाज़, मोटर कार और सारा यान्त्रिक संसार फ़ौलाद की ही सृष्टि है। फ़ौलाद बनाना पहले के लोग भी जानते थे किन्तु वे लोग उसे अधिक मात्रा में नहीं बना सकते थे। भारतवर्ष में भी तलवारों के बनाने में फ़ौलाद का प्रायः प्रयोग होता था। योरोप में भी क़रीब क़रीब ऐसा ही हाल था। वहाँ फ़ौलाद बनती थी, किन्तु उसके बनाने में इतना अधिक ख़र्च पड़ता था कि उसका व्यापक व्यवहार नहीं हो सकता था। फ़ौलाद बनाने की नई पद्धति का ठीक ऐसे ही समय में आविष्कार हुआ जब कि उसकी आवश्यकता थी। इसके आविष्कारक का जीवन वृत्त बड़ा उत्साह-जनक है।

सन् १८१३ ई० में तिजारती संसार में हलचल मचा देने वाले हेनरी बैसीमर (Henry Bessemer) नामक महा पुरुष का जन्म इंगलिस्तान के एक गाँव में हुआ था। इसके पिता फ्रान्स की टकसाल में काम करते थे। फ्रान्स की राजक्रान्ति के समय इसका परिवार इंगलिस्तान भाग गया था। उसके घर टाइप की ढलाई का काम होता था। इस प्रकार लड़के को भिन्न भिन्न धातुओं का ज्ञान हो गया। उसको स्कूली शिक्षा तो अधिक न मिली, किन्तु उसकी व्यावहारिक शिक्षा पर्याप्त रूप में हो गई थी। उसके पिता ने उसे एक छोटी सी खराद ख़रीद दी थी। इसकी सहायता से वह छोटी छोटी

मशीनें बनाता था। इसीसे उसने ईंट बनाने की एक मशीन तैयार की थी। मशीनों को चलते हुए देखना उसका एक व्यसन हो गया था। उसने लिखा है कि अगर वह कभी खाने पर मौजूद नहीं होता तो पनचक्की पर ही मिलता। उसे चक्की के पहिये पर पानी को गिरते हुए देखना बड़ा अच्छा लगता था।

हैनरी बैसीमर सत्रह वर्ष की ही अवस्था में पूरे छः फ़ीट लम्बा होगया था और महाराज दलीप की भाँति उसके लिए भी 'आकारसदृशः प्रज्ञः' (अर्थात् आकार के बराबर ही उसकी अक़्ल है) कहा जा सकता था। वह उसी उम्र में एक महती महत्वाकांक्षा से पूरित हो स्वतन्त्र आजीविका कमाने लंदन चला गया। उसने जिल्द-साज़ों के लिए अक्षरों के ठप्पे (Die) बनाना सीख लिया। कुछ दिनों के बाद उसे पता चला कि लोग बेईमानी से सरकारी स्टाम्पों को दुबारा तिबारा प्रयोग करके सरकार को सहस्रों रुपयों का धोखा देते थे। उसने एक ऐसी मशीन बनाई जिससे कि अर्ज़ियों और सरकारी कागज़ों में लगे हुए स्टाम्पों पर छेद हो जाते थे। वह थी तो ज़रा सी बात किन्तु थी बड़े महत्व की।

बैसीमर ने स्टाम्प के दफ़्तर में जाकर अपनी मशीन दिखलाई। दफ्तर वालों ने उसे बहुत पसन्द किया। सरकार ने उसे अपनाया और उससे बहुत लाभ उठाया, किन्तु उसके पुरस्कार-स्वरूप आविष्कारक को एक धेला भी न दिया। उससे कह दिया गया कि मशीन उसने अपने आप ही सरकार को भेंट की थी, सरकार ने कुछ माँगी तो न थी। इस उत्तर से वह हताश नहीं हुआ। जो पुरस्कार उसे अधिकार से मिल सकता था, उसके लिए वह किसी अधिकारी की ख़ुशामद नहीं करना चाहता था। उसे दुख इस बात का अवश्य था कि यदि कुछ धन मिल जाता तो वह अपनी प्रेयसी से विवाह कर लेता, किन्तु इस बात का
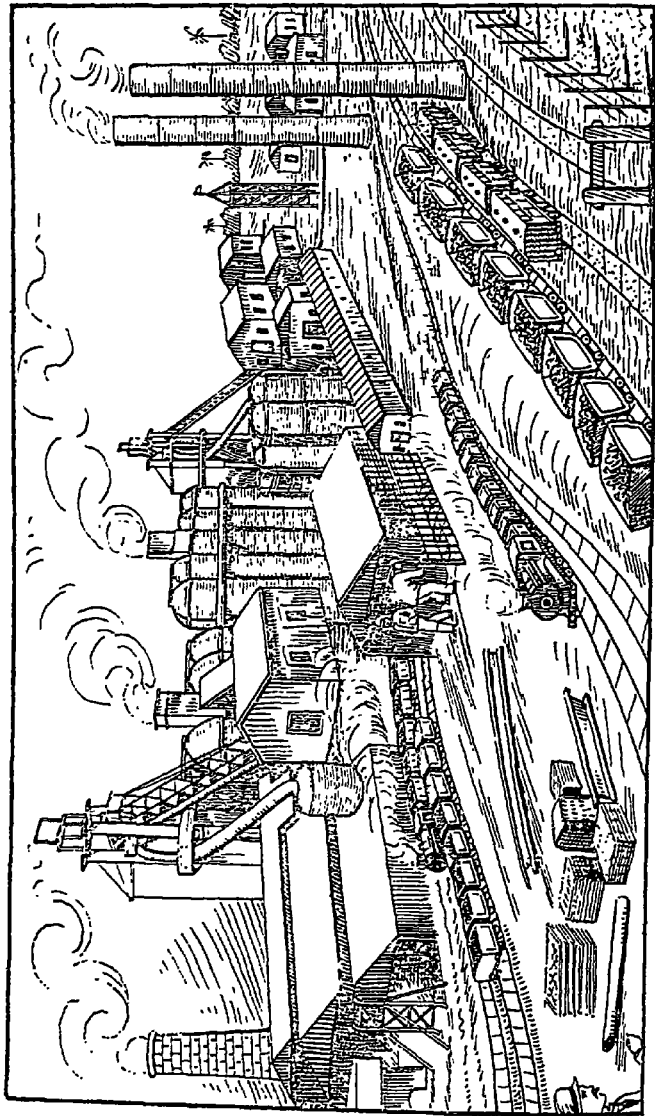
सन्तोष भी था कि उसने एक कारामद चीज़ वनाई और वह इस प्रकार की और भी चीज़ें वना सकेगा।

सच्चे परिश्रमी के समक्ष ऋद्धि सिद्धियाँ हाथ जोड़े खड़े रहती हैं। 'उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी' अर्थात् उद्योगी पुरुष को ही लक्ष्मी मिलती है। उसके लिए शीघ्र ही लक्ष्मी का द्वार खुल गया। उसने पीतल को पीसकर सुनहरी स्याही वनाने की तरकीव निकाली। वैसीमर ने उसके वनाने की पद्धति गुप्त रक्खी और उससे अच्छी सम्पत्ति प्राप्त की। इसका भी एक विचित्र इतिहास है। एक दिन उसकी वहन ने एक पुस्तक पर नाम लिख देने को कहा। पुस्तक इतनी सुन्दर थी कि उस पर सादी स्याही से नाम लिखने को उसकी तवियत नहीं चाहती थी। वह वाज़ार से सुनहरी स्याही लेने गया। स्याही तो ख़रीद लाया पर वह सोचने लगा कि इसमें सोना तो है नहीं फिर इसका इतना मूल्य क्यों? मूल्य मेहनत का था, हाथ से पीतल पीसने में वहुत मेहनत पड़ती थी और इसी से इसका इतना मूल्य था। नक़ली सोने से उसे सोने की कुञ्जी मिल गई।

वैसीमर का सव से महत्व का कार्य फ़ौलाद का तैयार करना था। तीसरा नैपोलियन तोप वनाने के लिए अच्छी फ़ौलाद की तलाश में था। उन दिनों एक टन फ़ौलाद तैयार करने में क़रीव साठ पौण्ड द्रव्य ख़र्च होता था। सादे लोहे और फ़ौलाद में यही अन्तर है कि फ़ौलाद में विकार नहीं होते हैं। वैसीमर ने सोचा कि यदि गलते हुए लोहे में हवा के तेज़ झोंके का प्रयोग किया जाय तो अशुद्धियाँ शीघ्र निकल जायँगी। इसी विचार से उसने ऐसी घरिया वनाईं कि जिनमें नीचे के छेद द्वारा मशीन की धोंकनी से वायु का प्रवल झोंका पहुँचाया जाय। लोहा उन घरियों मे डाला गया और तुरन्त ही घर्राती हुई अग्नि की ज्वालाएँ उठने लगीं और चारों ओर स्फुलिंग फैल गये।

छोटे छोटे धड़ाके भी होने लगे और उसे अपनी जान का भी ख़तरा हो गया, किन्तु वह वीर डटा रहा। थोड़ी देर में धड़ाके शान्त हो गये और आग की ज्वालाएँ भी मन्द पड़ गईं। लोहे का अग्नि संस्कार हो गया। घरिया में से जो धातु निकली वह शुद्ध फ़ौलाद थी। इस प्रकार बैसीमर ने एक बड़ा महत्व-पूर्ण आविष्कार कर लिया। जो काम पहले साठ पौण्ड खर्च करने से होता था, उसके एक पौण्ड के व्यय में सम्पादन होने की सम्भावना प्रमाणित हो गई।

वैसीमर ने इँगलिस्तान के लौह-व्यवसायियों को अपने आविष्कार का हाल सुनाया। पहले तो उसका मज़ाक उड़ाया गया किन्तु ऐसी महत्त्व पूर्ण बात को लोग मज़ाक में भूल नहीं सकते थे। लोहे के व्यापारियों ने बैसीमर की पद्धति से काम लेने का अधिकार सात हज़ार पौण्ड में ख़रीद लिया।

अन्य लोहे के व्यवसायियों को फ़ौलाद बनाने में सफलता न हुई। लोग उसे धोकेबाज़ कहने लगे। उसने सबकी भट्टियों का निरीक्षण किया और देखा कि जो वे कहते थे सत्य था। वह उनकी विफलता के कारण की खोज करने लगा। उसने दस हज़ार पौण्ड अपने घर वालों के लिए सुरक्षित रख अपना सारा धन इसकी खोज में लगा दिया। उसने भिन्न भिन्न देशों के लोहों की रासायनिक परीक्षा कराई। बाद में उसे पता चला कि जिस लोहे से उसने फ़ौलाद बनाई थी उसमें फ़ॉसफ़ॉरस (Phosphorus) न था और अन्य लोगों के लोहों में फ़ॉसफ़ॉरस था। उसने फ़ॉस-फ़ॉरस से शून्य लोहा इँगलिस्तान में ही खोज कर उन लौह-व्यवसायियों को दिया और अपने आविष्कार की सफलता प्रमाणित कर दी। पीछे से उसने यह भी मालूम किया कि अच्छे फ़ौलाद के लिए कार्बन, और मैगनीज़ भी आवश्यक होता है। फिर उसने उन द्रव्यों का भी पुट देना आरम्भ कर
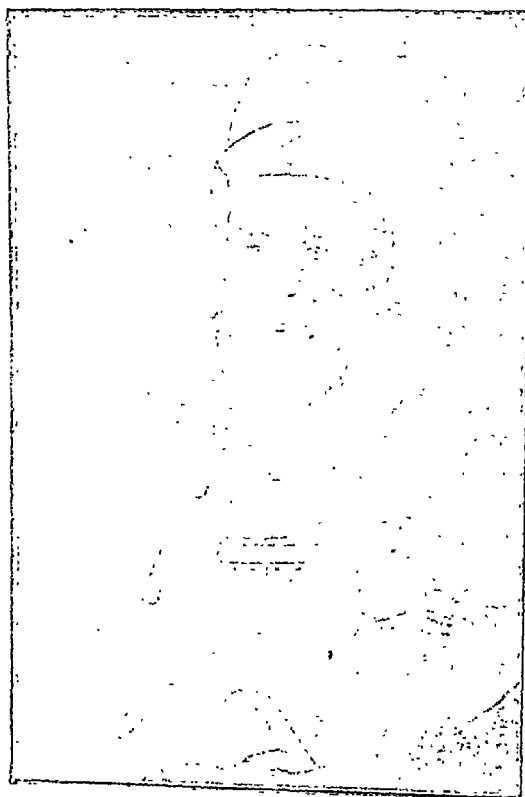
जमशेद जी नसरवान जी ताता

(१८३९ से १९०४ तक)

दिया। उसने स्वयं फ़ौलाद बनाने का कारख़ाना बना लिया और जो लोग उसकी पद्धति से लोहा बनाते थे वे उसे रॉयल्टी देने लगे। इस प्रकार उसके पास करोड़ों रुपया हो गया, और वह 'सर' की पदवी से विभूषित किया गया।

इसी फ़ौलाद की बदौलत अमरीका निवासी एन्ड्रू कारनेगी की (Andrew Carnegie) दुनिया के सब से बड़े मालदार व्यक्तियों में गणना होने लगी। एन्ड्रू कारनेगी एक बहुत ही ग़रीब आदमी का लड़का था। उसने शुरू शुरू में प्रायः तीन रुपये हफ़्ते पर एक रुई की मिल में नौकरी की थी। धीरे धीरे वह इतना बढ़ गया कि उसकी आमदनी का परिमाण हज़ारों रुपया फ़ी मिनट के हिसाब से बतलाया जाने लगा। व्यापार और व्यवसाय में ही लक्ष्मी का बास है।

आजकल भारतवर्ष में भी नए तरीक़े से फ़ौलाद बनने लगा है। टाटा कम्पनी ने इस सम्बन्ध में प्रशंसनीय कार्य किया है। यह कारख़ाना जमशेदपुर में हैं। (कारख़ाने तथा उसके मालिक का चित्र देखिए।)

अध्याय १४

रेलगाड़ी

पशुओं की अपेक्षा मनुष्य बहुत कम भौतिक बल रखता है। न वह घोड़े की बराबर दौड़ सकता है और न बैल की बराबर बोझा खींच सकता है। हाथी, शेर, चीते उससे बल और पराक्रम में कहीं बढ़े चढ़े हैं, किन्तु मनुष्य में इनकी अपेक्षा बुद्धि अधिक है और इस कारण वह बल में सब से अधिक माना गया है।

यद्यपि मनुष्य के बल बढ़ाने में बारूद, बिजली, डाइना-माइट आदि सभी वस्तुओं ने योग दिया है तथापि इन शक्ति-वर्धक पदार्थों में वाष्प का स्थान सब से ऊँचा है, क्योंकि अधिकांश बिजली जो उत्पन्न की जाती है, वह भी वाष्प की शक्ति से बनती है।

वाष्प-शक्ति के आविष्कार के सम्बन्ध में प्रायः 'जेम्स वाट' का नाम लिया जाता है, किन्तु यह बात सोलह आने ठीक नहीं। वाष्प की शक्ति का ज्ञान लोगों को बहुत पहले से था। वाट से प्रायः दो सहस्र वर्ष पूर्व यानी सन् १२० ईसा से पूर्व मिश्र-देश-निवासी हीरो वाष्प की शक्ति से एक गोले को घुमाने में सफल हुआ था। हीरो के आविष्कारों से लोगों ने विशेष लाभ न उठाया, उसके यंत्र का सिद्धान्त रूप से तो बड़ा महत्व था किन्तु वह समय उसकी व्यवहारिक उपयोगिता का न था, तत्कालीन समाज के सम्मुख ऐसी कोई विकट समस्या ही न थी जिसमें उसका प्रयोग होता।

जब लोग पत्थर के कोयले का प्रयोग सीख गये और उनकी खानें

गहरी होने लगीं तब उनमें से पानी निकालने की तथा कोयले को ऊपर ले जाने की आवश्यकता हुई। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। सन् १६६३ ई० में एडवर्ड समरसेट (Edward Somerset) नाम के अँगरेज़ ने एक ऐसा इंजन बनाया जो चार मिनट में चार बाल्टी पानी चालीस फ़ुट की ऊँचाई पर फेंकता था। इसके बाद सन् १६८० में पेपिन (Papin) नामक एक फ़रासीसी ने एक इंजन बनाया जिसमें स्टीम की ताक़त से एक पिस्टन ऊपर को उठता और उसके बाद जब सिलिण्डर पर पानी डाल कर उसे ठंडा किया जाता तब पिस्टन नीचे को आता और फिर दुबारा आग लगने पर ऊपर उठता। उन दिनों स्टीम पिस्टन के भीतर ही बनती थी।

यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि पिस्टन और सिलेण्डर क्या वस्तु हैं? अँग्रेज़ी के बड़े नामों से डरना नहीं चाहिए। होली के दिनों में प्रायः सभी लोग पिचकारी से रंग फेंकते हैं, यदि आप स्वयं न फेंकते हों तो दूसरों को रंग फेंकते अवश्य देखा होगा। पिचकारी के भीतर कपड़े की खूब सटी हुई डाट होती है। पिचकारी की डाट जब नीचे रहती है तब उसके नीचे के हिस्से में हवा नहीं होती और जब उसको पानी में डालकर डाट को ऊपर खींचा जाता है तब पानी और डाट के बीच का स्थान ख़ाली रह जाता है। उसमें हवा का दबाव कम होता है। पानी की बाहरी सतह पर हवा का दबाव साढ़े सात पौण्ड फी वर्ग इंच होता है। उस दबाव से पानी बिना दबाव की जगह में पहुँच जाता है (पानी भी दबाव में नहीं रहना चाहता) पानी के पम्प इसी सिद्धान्त पर बनते हैं, लेकिन मैं आपको इंजन की पिस्टन और सिलिण्डर बतला रहा हूँ। पिचकारी का जो ख़ाली घेरा होता है वह तो सिलिण्डर है और डाट पिस्टन है। मशीनों में डाट कपड़े की नहीं होती और

न सिलिण्डर ही ऐसी पतली चद्दर की होती है जैसी कि पिचकारी की। यदि सिलिण्डर में पानी हो तो उस पानी को गरम करने से उसकी भाप बनेगी। भाप फैलना चाहती है और फैलने के लिए जगह चाहिए। जो पानी एक इंच घन (Cubic Inch) स्थान घेरता है उसकी भाप को १६०० घन इंच स्थान चाहिए। यदि कोई ऐसी तरकीब हो सके कि एक बार भाप की शक्ति से पिस्टन उठे और फिर नीचे गिरे और गिर कर उठ सके तो उससे पम्प चल सकता है और दूसरे बहुत से काम हो सकते हैं। उस समय पिस्टन को नीचे लाने की इसके सिवाय और कोई तरकीब न थी कि पिस्टन के भीतर की भाप को ठंडा करके उसे फिर पानी बनाया जाय और जगह खाली होने से पिस्टन गिरे और दुबारा आग लगाने से पिस्टन उठे। उस ज़माने के लिये इतना ही होना बहुत बड़ी बात थी।

पेपिन के इंजन में न्यूकोमन नाम के एक अंगरेज़ लुहार ने और भी उन्नति की। उसने ऐसी आयोजना की कि पिस्टन के भीतर ही पानी पहुँच कर भाप को ठंडा करे। इसके लिए बार बार कपाटिकाओं (Valves) अर्थात् द्वारों को खोलना पड़ता था। भाप और पानी की कपाटिकाओं के खोलने और बन्द करने का काम हम्फ़री पॉटर (Humphrey Potter) नाम के एक खिलाड़ी बालक को सौंपा गया। वह हर समय कपाटिकाओं को खोलने और बन्द करने में नहीं लगा रह सकता था। उसके लिए और कुछ भी ज़रूरी काम था और वह था खेल-कूद। लड़के ने खेल कूद के लिए समय निकालने के हेतु कपाटिकाओं में लकड़ियाँ बाँध कर ऐसा प्रबंध कर लिया कि इंजन की चाल से ही कपाटिकाएँ खुलती और बन्द होती रहें। सारे आविष्कारों का मूल मनुष्य की महनत बचाने में है। पॉटर बालक ने अपने मस्तिष्क के बल से अपनी महनत बचा ली।

न्यूकोमैन का इंजन कोयले के व्यवसायियों के लिए अधिक उपयोगी साबित हुआ और उसका खूब व्यवहार होने लगा। किन्तु उसके प्रयोग में खर्चा बहुत बैठता था।

वाष्प इंजन के इतिहास में न्यूकोमैन के बाद जेम्स वाट (James watt) का नाम आता है इस बालक का जन्म सन् १७३६ ई० में हुआ था इसके बाल्यकाल के सम्बन्ध में कई किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब ठीक हैं या नहीं किन्तु उनसे यह अवश्य प्रमाणित होता है कि उसका ध्यान वाष्प की समस्या की ओर बाल्यकाल में ही आकर्षित हो गया था। उसको पुस्तकों से अधिक प्रेम न था परन्तु ड्रॉइंग में उसकी विशेष रुचि थी।

चि० ७ जेम्सवाट और पानी की बटलोई

एक बार जब कि जेम्सवाट खौलते हुए पानी की बटलोई के पास बैठकर वाष्प सम्बन्धी कुछ जानकारी प्राप्त कर रहा था तो उसकी चाची ने उसे नीचे के शब्दों में डाटा था—"जेम्स, मैंने तुमसा बेकार लड़का कोई नहीं देखा, किताब हाथ में लो, और कुछ उपयोगी काम करो। डेढ़ घण्टे से मैं देखती हूँ कि तुम पानी की 'कैटिली' (Kettle) अर्थात् बटलोई से खेल कर रहे हो। इस तरह व्यर्थ समय नष्ट करने में क्या तुमको लज्जा नहीं आती ?" जिस बालक पर यह फटकार पड़ी थी आज वह संसार के महान् पुरुषों मे गिना जाता है। वास्तव में वह उस समय खेल नहीं कर रहा था, वरन् बटलोई के पास बैठा हुआ इस बात की परीक्षा कर रहा था कि वाष्प कितनी देर में ठण्डी होकर फिर पानी का रूप धारण कर लेती है। वह ऐसी शिक्षा प्राप्त कर रहा था जो कोई पुस्तक उसे नहीं दे सकती थी।

वाट जब बड़ा हुआ तो उसने यन्त्रों की मरम्मत का पेशा अख्तियार किया। एक बार यन्त्र सुधारक की हैसियत से उसके पास न्यूकोमैन का इंजन मरम्मत के लिए लाया गया। वाट ने देखा कि उस इंजन में ताप और शक्ति का बहुत अपव्यय होता है। उसके सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि सिलिण्डर के विना ठंडे हुए ही किस प्रकार वाष्प का ज़ोर घटा दिया जाय जिससे कि पिस्टन फिर अपनी जगह को लौट आय। सन् १७६५ ई० के एक सुन्दर रविवार के मध्याह्नोपरान्त भ्रमण में उसकी समस्या हल हो गई। उसने सोचा कि यदि वाष्प किसी दूसरे वर्तन में ठण्डी की जा सके तो पिस्टन वैसी की वैसी ही गरम वनी रहेगी और ताप का अपव्यय न होगा। इस प्रकार उसने एक नई तरह का इंजन तैयार किया।

पहले तो इस कार्य के करने में वाट को धनाभाव के कारण वड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अन्त में सौभाग्यवश

एक धनी पुरुष ने उससे साझा करके उसकी आर्थिक समस्या को हल कर दिया। वाट ने अपने इंजन में और भी सुधार किये जिसके कारण उसका इंजन बहुत उपयोगी बन गया। कोयले की खानों का काम उपयुक्त यन्त्रों के न होने के कारण बन्द हो गया था। वहाँ वाट का इंजन लगाया गया और वह खूब काम देने लगा। वलायत की और खानों ने भी उसके इंजन को अपनाया। इस प्रकार वाट ने अपने परिश्रम से दिखला दिया कि उसका बटलोई के पास बैठना कितने महत्व का कार्य था। यह वाट के ही परिश्रम का प्रताप है कि हम भिन्न-भिन्न कार्यों में वाष्प-इंजन का प्रयोग देखते हैं।

वाट के इस इंजन के बनने के बाद भी रेल का इंजन बनाने में बहुत कुछ बातों की पूर्ति करना आवश्यक था। वाट का इंजन केवल शक्ति दे सकता था, चल नहीं सकता था। उसका इंजन कोयला ढोने के काम में अवश्य लाया गया, किन्तु एक दूसरे ही प्रकार से उसका इस कार्य में प्रयोग होता था। खान से कुछ दूर पर इंजन स्थापित कर दिया जाता था तथा उस के पास पटलियों पर कोयलों के डब्बे खड़े कर दिये जाते थे और वह इंजन उन डब्बों को अपनी ओर खींच लेता था। इसी प्रकार एक दूसरा इंजन डब्बों को और आगे बढ़ाता था।

स्थायी इंजन को चालू बनाने का श्रेय जॉर्ज स्टीफ़िन्सन (George Stephenson) को है। इसका जन्म सन् १७८१ में हुआ था। पहले पहल इसने कोयलों की खानों से पत्थर उठाने का काम किया था, इसके बाद धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ वह फ़ायर-मैन हुआ और फ़ायर-मैन से इंजीनियर हो गया। तब उसने विवाह कर लिया और टाइन नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर वह गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लगा। वह कोयलों की खानों पर वाट के इंजन से काम करता था। उसके ध्यान में

आया कि किसी प्रकार से एक चलने वाला इंजन बनाया जाय। उसने अपना विचार कोयले के व्यवसायियों को बतलाया और उन लोगों ने उसकी धन से सहायता की। दस महीने के भीतर उसने ब्लूचर (Blutcher) नाम का एक इंजन तैयार किया जो कि आठ कोयले की भरी हुई गाड़ियों को लोहे की पटरी पर चार मील प्रति घण्टे की गति से खींच सकता था।

स्टीफ़िनसन का पहला इंजन बड़ा दोषपूर्ण था, उसमें शब्द भी बहुत होता था, और कमानियों के न होने के कारण धक्के भी बहुत लगते थे; यहाँ तक कि उसके धक्के से उन पटरियों को भी हानि पहुँचती थी जिन पर कि वह चलता था। उसके इंजन के शब्द से जानवर भाग जाते थे। स्टीफ़िन्सन ने अपने इंजन में एक और सुधार किया। उसने सोचा कि जब स्टीम अपना काम कर चुकती है तब भी वह कुछ प्रयोग में आ सकती है। उसने बेकार स्टीम से आग में हवा पहुँचा कर उसे तेज़ करने का काम लिया। इस विचार से उसने एक नया इंजन बनाया और 'पफ़िंग बिली' (Puffing Billy) के नाम से उसका नामकरण किया।

कोयले वालों ने तो स्टीफ़िनसन के इंजन को ख़ूब अपनाया किन्तु अन्य लोगों ने उसकी हँसी उड़ाई। किसान लोग कहते थे कि इसकी आवाज़ से उनके जानवर खेतों से भाग जायँगे। अस्तु, किसी अंश में किसानों की शिकायत तो ठीक थी किन्तु शिकारी लोग भी शिकायत करने लगे कि इंजन के शब्द से जानवर भाग जायँगे और उनकी शिकार मारी जायगी, यात्रियों के हित से भी शिकारियों का हित अधिक महत्वपूर्ण ठहरा! किसी ने बोइलरों के फट जाने की आशंका की तो किसी ने रेल की यात्रा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बतलाई। अन्त में समय पाकर सब विरोध विलीन हो गया और यात्रा की गाड़ी

के लिए रेल की लाइन डाली गई। इन्हीं पटरियों के कारण रेल, रेलगाड़ी कहलाती है। रेल से पहले भी इंगलिस्तान में रेलों (लोहे की पटरियों) का प्रचार था, इन पटरियों पर भारी गाड़ियाँ चलाने में बड़ा सुभीता रहता था।

एक दिन इस यात्रा की गाड़ी का प्रदर्शन किया गया। सहस्रों आदमी उस विना घोड़े की गाड़ी को देखने को आये। प्राय: छ: सौ आदमी, कुछ बैठे, कुछ खड़े और कुछ टँग कर गये। लोगों ने उसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की।

रेल में साधारण लोग तो यात्रा करने लगे किन्तु ऊँचे घराने के लोग जन साधारण के साथ बैठना पसन्द नहीं करते थे। वे लोग अपना सामान नौकरों के हाथ रेल में भेज देते और स्वयं अपनी घोड़ा गाड़ी में जाते थे। सन् १८४२ में जब यशस्विनी महारानी विक्टोरिया लन्दन से विण्डसर गई तब से बड़े घर के लोग भी रेल में बैठने लगे।

उस समय से रेलों में अनेक प्रकार की उन्नतियाँ होती रहीं। यात्रियों के आराम के लिए रेल के डब्बों में अनेक प्रकार की सुविधाएँ कर दी गईं। डब्बों का श्रेणी विभाग भी कर दिया गया है। विलायत की गाड़ियों में सोने के लिए अलग डब्बे होते हैं। भारतवर्ष में डाक और एक्सप्रेस गाड़ियों के साथ खाने की रैस्टोरेंट कार (विश्रान्तियान)भी रहती हैं। गरमी के दिनों में बरफ सोडा लेमनेड वाला तो सभी गाड़ियों में चलता है। आजकल तो प्रदर्शिनी की रेल गाड़ियाँ (Exhibition Train) भी चल गई हैं, और समय समय पर ऐसी भी रेलें जाती हैं जो यात्रियों को चारों धाम की यात्रा करा देती हैं।

रेल गाड़ियों द्वारा भारतवर्ष के व्यापार और व्यवसाय में बहुत कुछ उन्नति हुई है। कोयले के 'वेगन' के 'वेगन' देश के इस सिरे से उस सिरे तक पहुँचाये जाते हैं। रेलों के तारतम्य

द्वारा मिलों और कारखानों का माल देश के भिन्न भिन्न व्यापार केन्द्रों में व्यतरित किया जाता है। देश के भागों में उपजाऊ भागों से मनुष्यों के लिए अन्न और पशुओं के लिए भूसा पहुँचाया जाता है।

रेलगाड़ी द्वारा प्रान्तीयता की सीमाएँ मिटती जाती हैं, सामाजिक बन्धन दृढ़ होते जाते हैं और समता के भावों का प्रसार हो रहा है।

पहले रेल गाड़ियों के लड़ने का अधिक भय रहता था अब वह भी बहुत कम होता जाता है। दिन प्रति दिन रेलों की उपयोगिता बढ़ती जाती है। योरुप के देशों में ज़मीन के नीचे भी रेल चलती है और अब उनमें भाप के स्थान में बिजली का भी प्रयोग होने लगा है।
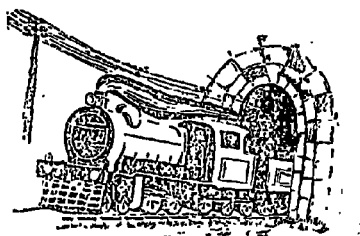
अध्याय १५

रॉबर्ट फुल्टन और वाष्प-नौका

संसार के ४/५ भाग में केवल जल ही जल है। बहुत से देश, द्वीप, महाद्वीप व टापू समुद्र के मध्य में बसे हुए हैं। इन सब का निकट सम्बन्ध जलयान द्वारा ही हो पाया है। प्राचीन काल में भी छोटी छोटी नौकाएँ तथा बड़े बड़े जहाजों के चलने का पता चलता है* क्योंकि इनका उल्लेख हमारे काव्य और नाटकों में भी हुआ है। रामायण में नौका का उल्लेख है, जायसी में एक बड़ी भारी समुद्र यात्रा का वर्णन आया है। प्राचीन मिश्र देश वासी जल यात्रा निपुण बतलाये जाते हैं। पहले ज़माने में जहाज़ हवा के आश्रय पर चलते थे। इस-लिए हवा की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता का सदैव ध्यान रखना पड़ता था। यदि हवा अनुकूल न हुई तो महीनों जहाज़ को खड़ा रहना पड़ता था और इस प्रकार यात्रा में बड़ा विलम्ब हो जाता था। परन्तु आधुनिक समय के जहाज़ इन कठिनाइयों से परे हैं।

भिन्न भिन्न देश वाले अपने यहाँ के किसी न किसी व्यक्ति को वाष्प-नौका का प्रथम आविष्कारक बतलाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन वाले अपने यहाँ के किसी व्यक्ति को, स्पेन वाले अपने यहाँ के 'ब्लास्को डि ग्रे' नामक व्यक्ति को और फ्रान्स वाले

---

* इस सम्बन्ध में डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने एक पुस्तक भी लिखी है।

अपने यहाँ के 'डेनिस पेपिन' को जहाजों का प्रथम आविष्कारक मानते हैं। जलयान के आविष्कारों के लिए रॉवर्ट फुल्टन तथा जॉन एरिक्सन का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इन दोनों में रॉवर्ट फुल्टन अधिक प्रसिद्ध हैं, क्योंकि वाष्प-नौका को उपयोगी वनाने में इनको सव से अधिक सफलता मिली है।

रॉवर्ट फुल्टन (Robert Fulton) का जन्म सन् १७६५ में अमरीका के पेन्सिलवेनिया नामक नगर में हुआ था। जव ये तीन वर्ष के थे तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया था; इस कारण इनकी पढ़ाई लिखाई कुछ न हो सकी थी। जव ये केवल दश वर्ष के ही थे तो इन्होंने अपने अध्यापक से कह दिया था कि 'साहव मेरे मस्तिष्क में स्वयं अपने ही इतने विचार भरे पड़े हैं कि उसमें इन भद्दी पुस्तकों के भरने के लिए स्थान नहीं है।'

इस प्रकार वचपन से ही इनकी प्रतिभा का पता चलता है। फुल्टन ने इङ्गलैण्ड में जाकर भाप के इंजिनों (Steam Engines) के वारे में शिक्षा प्राप्त की तथा फ्रान्स में भी टॉरपीडो (Torpedo) के आविष्कार में लगा रहा। सन् १८०० में फुल्टन ने नौटीलस (Nautilus) नामक प्रथम पनडुव्वी नाव (Driving-boat) तैयार की। इस नाव में वैठकर ये वीस मिनट तक जल के अन्दर रह सकते थे। यह नाव जल के भीतर रहते हुए भी टॉरपीडो द्वारा विस्फोटक गोले फेंक सकती थी।

इसके पश्चात् फुल्टन इँगलैण्ड गया, वहाँ के प्रधान-मंत्री पिट को उसने अपने आविष्कार दिखलाये, और अपनी टॉरपीडो में ७० पौंड वारूद भर कर पिट के घर के निकट खड़े हुए एक वड़े जहाज को उड़ा दिया। उस जहाज के दो टुकड़े हो गये। पिट इससे वड़ा प्रभावित हुआ किन्तु शीघ्र ही उसका स्वर्गवास हो गया और फुल्टन का एक घनिष्ट मित्र संसार से उठ गया। दूसरे प्रधान-मंत्री को उसके आविष्कारों

में कुछ भी रुचि न थी। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने उसके आविष्कारों को ख़रीदने का इरादा प्रकट किया, किन्तु फ़ुल्टन में धन के प्रलोभन की अपेक्षा स्वदेश प्रेम अधिक था उसने स्पष्ट कह दिया "सम्भव है मेरे देश को भी कभी इन आविष्कारों की आवश्यकता पड़ जाय, मैं इनको बीस हज़ार पौंड सालाना पर भी आप लोगों के हाथ नहीं बेचूँगा।" फ़ुल्टन यदि चाहता तो इस अवसर पर हज़ारों रुपया पैदा कर सकता था किन्तु उसने अपने देश के हित को स्वर्ण मुद्राओं से भी अधिक मूल्यवान समझा।

इसके पश्चात् अमरीका व यूरुप में अन्य नावें बनने लगीं। पेंसिलवेनिया निवासी उसके पड़ौसी विलियम हैनरी (William Henry) ने सन् १७६३ में एक छोटी सी नाव बनाकर निकट की एक नदी में तैराई, किन्तु जब फ़ुल्टन यूरुप में भ्रमण कर रहा था, इस आविष्कारक की मृत्यु हो गई थी।

फ़ुल्टन को इँगलैण्ड में सिमिंग्टन (Symington) की बनाई हुई एक वाष्प-नौका देखने का अवसर मिला। वह नौका उसकी बनाई हुई नौका से अच्छी थी। उसने इस नाव पर यात्रा की और इसकी बनावट आदि के बारे में भी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त करली।

अमरीका लौटते समय फ़ुल्टन महोदय वाष्प-नौका बनाने के लिए एक भाप का इंजिन भी ख़रीद कर साथ लेते गये। वहाँ पर उन्होंने अपने मित्र लिविंगस्टन (Livingston) की सहायता से एक नौका निर्माण करने की आयोजना की। नाव बनने के पहले ही इनके पास जितना रुपया था सब ख़र्च हो गया। कोई भी व्यक्ति रुपया देने को तैयार नहीं था, क्योंकि लोग वाष्प-नौका बनाना एक निरर्थक कार्य समझते थे। अन्त में कुछ लोगों ने फ़ुल्टन को रुपया दिया किन्तु उन्होंने अपने मित्रों

के ताने व हँसी के भय से अपना नाम प्रकट न किया।

फ़ुल्टन की नौका को बनते देख कर लोगों को यह विश्वास न होता था कि यह भी पानी पर तैर सकेगी। इस कार्य को लोग फ़ुल्टन की मूर्खता (Fulton's folly) कह कर पुकारते थे। अन्त में नाव बनकर तैयार हुई और इसका नाम क्लेरमोंट रक्खा गया। शुक्रवार ११ अगस्त सन् १८०७ को यह पानी में डाली गई। उत्सुक जनता की अपार भीड़ थी। जब वह पानी पर तैरने लगी तो सब लोग आश्चर्य चकित हो गये।

फ़ुल्टन की मृत्यु सन् १८१५ में हुई थी, इसके पहले वह सत्रह नावें तैयार कर चुका था, जिनमें प्रथम युद्ध-नौका (War-frigate) प्रथम टॉरपीडो बोट (Torpedo-boat) तथा वाष्प-नौका (Steam ferry-boat) भी सम्मिलित थीं।
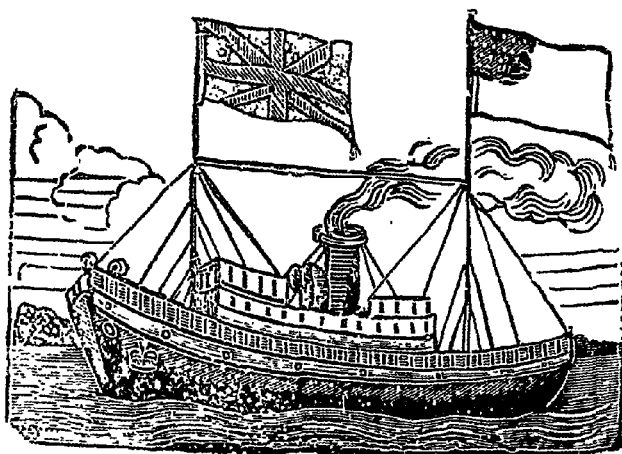
वाष्प-नौका

जहाज़ बिल्कुल नावों के समान ही होते हैं। नावें छोटी होती हैं और ज़हाज़ बड़े। जहाज़ एक हज़ार फ़ुट तक लम्बे

होते हैं और प्रायः तीन हज़ार मनुष्य इनमें वैठ कर सुविधा-पूर्वक यात्रा कर सकते हैं। जहाज़ों में मकानो की भाँति मंज़िलें भी होती हैं। सब से नीचे की मंज़िल कोयला, बॉइलर तथा इंजिन के लिए ही नियुक्त है। दूसरी व तीसरी मंज़िलों में यात्रियों के लिए केबिन (Cabin) बने होते हैं। केबिन जहाज़ पर बने हुए कमरों को कहते हैं। इनमें भी रेलगाड़ी के डब्बों के समान श्रेणी-विभाजन होता हैं। अधिक रुपया व्यय करने वाले को अधिक आराम का और कम खर्च करने वाले को कम आराम का कमरा मिलता है। जहाज़ के सब से ऊपर का हिस्सा 'डैक' कहलाता है, जो खुला होता है। यहाँ से समुद्र के प्राकृतिक दृश्य खूब दिखलाई पड़ते हैं। सब से ऊपर जहाज़ के कप्तान का कमरा होता है जिसमें बैरोमीटर, कम्पास, दूरबीन आदि यंत्र लगे रहते हैं। इन्हीं यंत्रों की सहायता से वह जहाज़ की चाल तथा सामुद्रिक वातावरण की जाँच करता रहता है।

जहाज़ों में भोजनालय, औषधालय, स्नानागार तथा क्रीड़ास्थल अलग अलग बने होते हैं। बहुत से बड़े बड़े जहाज़ों में सिनेमा घर तथा टेनिस खेलने के कोर्ट भी होते हैं। रेडियो भी लगे होते हैं जिनके द्वारा लोग देश विदेश के समाचार जान सकें तथा विपत्ति के समय सहायता माँग सकें। यात्रियों के पीने के लिए मीठे पानी की टंकियाँ भी भरी होती हैं। जहाज़ में छोटी छोटी नौकाएँ भी लटकी रहती हैं जो जहाज़ के डूबने के समय प्राण रक्षा में सहायक होती हैं।

यात्रा करने के अतिरिक्त जहाज़ों पर हज़ारों टन माल भी भेजा जा सकता है। कपड़ा, कोयला, लोहा, सोना, जानवर तथा अन्य वस्तुएँ एक देश से दूसरे देश तक भेजी जा सकती हैं। जिस प्रकार शान्ति के दिनों में जहाज़ परम उपयोगी

सिद्ध हुए हैं वैसे ही युद्ध में भी इनकी उपयोगिता है। युद्ध के दिनों में जहाज़ एक क़िले का काम देता है। ऊपर के हिस्सों में तोपें लगा दी जाती हैं। सैनिक भर लिये जाते हैं; और महीनों के लिए खाने पीने की सामग्री भी इकट्ठी करली जाती है। भिन्न भिन्न देश जितना अपनी पैदल सेना पर गर्व रखते हैं उससे भी अधिक महत्व वे अपनी नौ-सेना को देते हैं।

भारतवर्ष में पहले समुद्र यात्रा का विरोध किया जाता था। जिसने एक बार समुद्र पार कर लिया, उसको जाति से बाहर निकाल दिया जाता था; किन्तु जैसे जैसे समय बदलता गया वैसे ही विचार भी बदलते गये। अब लोग शिक्षा ग्रहण करने तथा देशाटन करने के लिए विदेश जाते हैं। जहाज़ की कई एजेन्सियाँ हैं जिनमें टॉमस कुक एण्ड को० (Thomas Cook & Co.) तथा ग्रिण्डले एण्ड को० (Grindley & Co,) अधिक प्रसिद्ध हैं। प्रायः इनके द्वारा तथा अन्य ऐसी एजेन्सियों के द्वारा समुद्री यात्रा की व्यवस्था की जाती है। ये एजेन्सियाँ संसार भ्रमण का भी प्रबन्ध कर देती हैं। इनकी ओर से नियुक्त दुभाषिये भ्रमण करने वालों को प्रत्येक देश में मिलते हैं। ये एजेन्सियाँ एक प्रकार के कूपन (Coupon) देती हैं जो भिन्न भिन्न देशों में स्थापित की हुई उनकी एजेन्सियों में नोट की तरह भुनाये जा सकते हैं।

अध्याय १६

मोटर कार

सब यानन ते श्रेष्ठ अति, द्रुत गति गामिनि 'कार'
धनिक जनन के जिय वसी, निस दिन करत विहार ॥
मंजुल मूर्ति सदा सुख दैनी । समुझि सिहावहिं स्वर्ग नसैनी ॥
उछरत-कूदत किलकत जाई । सब कहँ लागत परम सुहाई ॥
पौं-पौं करत सुहावति कैसे । मुनि मख संख बजावहि जैसे ॥
चारु चक्र-धारिनि मन भावनि । कलरव करनि विमोद बढ़ावनि ॥
छाँह करन हित छयेउ विताना । विचरति फिरत वरन धरि नाना ॥
पीवहि तेल उड़ावहि धूरी । पद चारिन कहँ दुरगति पूरी ॥
विद्युत दीप करत उजियारी । जनु हरि* चन्द उगेउ तम टारी ॥
तेहि चढ़ि जन निज गर्व दिखावहिं । पद, प्रभुता, प्रमाद दरसावहिं ॥
मग विच कीच उलीचत कैसे । फागुन फाग रचहिं जन जैसे ॥
वल विक्रम जव जात नसाई । सरकत नेक न उठत उठाई ॥
वाहन-कुल की परम गुरु, सब कहँ सुलभ न सोय ।
रघुवर की जिनपै कृपा, ते नर पावहिं तोय ॥

—पं० हरिशङ्कर शर्मा

'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनवा जोड़ा' यह कहावत प्राय: प्रत्येक आविष्कार के सम्बन्ध में लागू होती है, परन्तु यह मोटर कार के विषय में विशेष रूप से चरितार्थ होती है। जब किसी वस्तु के अनेक संस्कार हो जाते हैं और उसकी उपयोगिता पूर्णतया प्रमाणित हो जाती है तभी वह भारतवर्ष में आती है, इसलिए हम बाहर की वस्तुओं

---

* हरि = सूर्य ।

के इतिहास से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं और समझते हैं कि कैसी जादू की सी चीज़ बन कर आ गई है। वास्तव में किसी चीज़ में जादू नहीं, जादू है परिश्रम और संलग्नता में। आइए, देखिए मोटर कार के आविष्कार में कितने दिमाग़ लगे हैं, और कितनी जातियों ने इसके निर्माण में अपना सहयोग दिया है।

रेल के इंजन का आविष्कार हो गया था, और रेल भी चलने लगी थी, किन्तु वाष्प इंजन के आविष्कार के प्रारम्भिक दिनों में पहले पहल इंजन पटरी पर नहीं चलते थे वरन् वे आजकल की मोटर लारियों की भाँति सड़क पर ही चलते थे। पटरी पर चलने वाली रेल की बहुत से डब्बों के खींचने में तो बड़ी उपयोगिता है परन्तु वह गाड़ी की भाँति लीक ही लीक चल सकती है, 'सायर सिंह और सपूत' की भाँति लीक छोड़
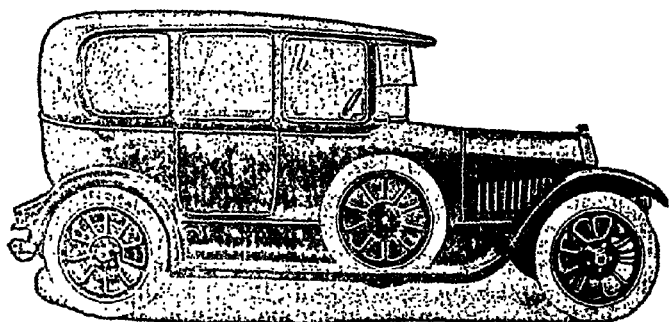
मोटर कार

कर नहीं चल सकती। थोड़े से मनुष्यों को यदि किसी विशेष स्थान में जाना हो तो उनके लिए रेल विशेष उपयोगी नहीं है। मनुष्यों को ऐसी गाड़ी की आवश्यकता थी जो कि इच्छानुकूल

चाहे जहाँ ले जाई जा सके और चाहे जहाँ खड़ी की जा सके। विना लीक पर चलने वाले इंजनों को लोगों ने निरर्थक नहीं समझा। यद्यपि वे इंजन वड़े भारी और आडम्बर पूर्ण होते थे तथापि लोग उनकी सी छोटी गाड़ियाँ वनाने की धुन में लगे रहे।

सन् १८२७ ई० में गोल्ड्सवर्दी गर्नी नाम के किसी व्यक्ति ने स्टीम से चलने वाली एक कामचलाऊ गाड़ी तैयार की, जो कि पन्द्रह मील फ़ी घंटे चलती थी।

भारत की भाँति इँगलिस्तान में भी प्राचीन काल के लोग कल पुर्ज़ों के विरोधी थे। वे लोग इन चीज़ों को शैतान की करामात समझते थे। पहले पहल इँगलैण्ड वासी पत्थर के कोयलों के भी विरोधी थे। कोई सभ्य स्त्री ऐसे कमरे में नहीं जाना चाहती थी जिसमें कि पत्थर के कोयले जल रहे हों। जव पहले पहल वाइसिकिल वनी थी तव डाक्टर जॉनसन ने कहा था कि "अभी तक यह समस्या थी कि सवारी मनुष्य को ले चले अव मनुष्य को अपने को तथा सवारी को भी ले चलना पड़ेगा"। इसमें तो थोड़ा हास्य भी था किन्तु वेपढ़े लोगों का विरोध केवल मौखिक परिहास में ही सीमित न रहता था। एक मेले में वेचारे गर्नी की वड़ी दुर्गति वनाई गई। वह इतना पीटा गया कि वेहोश हो गया, लोग उनकी पिटाई से डरे नहीं और उस कार्य में संलग्न रहे। उन्होंने इतनी उन्नति करली कि इस प्रकार की गाड़ियों की गति तीस मील तक पहुंच गई।

छोटी यांत्रिक गाड़ियों के आविष्कारकों को अन्ध विश्वास के अतिरिक्त, दूसरों के स्वार्थ का भी सामना करना पड़ा। रेलगाड़ी वाले तथा घोड़ा गाड़ी वाले दोनों ही इस प्रकार की गाड़ियों के विरोधी थे। इससे उनको भारी

आर्थिक हानि पहुँचने की सम्भावना थी, इसलिए उन्होंने ऐसी गाड़ियों के विरुद्ध यह आन्दोलन उठाया कि इन से लोगों के दब कर मर जाने का भय रहता है। इसलिए विलायत में यह क़ानून पास हो गया कि सड़क पर चलने वाली इस प्रकार की गाड़ियाँ चार मील फ़ी- घण्टे की चाल से ज्यादा न चलें और उनके आगे एक आदमी जनता को सचेत करने के लिए लाल झंडा लेकर दौड़ा करे। यह लाल झंडे का क़ानून सन् १८९६ में रद्द हुआ। तब तक बेचारे अँगरेज़ आविष्कारक इस क़ानून के कारण इस सम्बन्ध में विशेष उन्नति न कर सके। सौभाग्य से और देशों में ऐसा क़ानून न था।

वास्तव में लोगों को गैस* के इंजन की ज़रूरत थी कोयले के इंजन सड़क के काम के उपयोगी न थे। अच्छा ही हुआ कि लाल झंडे के क़ानून से लोग इस ओर अधिक गवेषणा करने से रुके रहे।

लोगों ने तोपों को चलते देखा था, बारूद की संचालन शक्ति से लोग अपरिचित न थे। वास्तव में तोपें गैस के इंजन का पूर्व-रूप हैं। एक बारूद का इंजन भी बनाया गया, किन्तु उसमें विशेष सफलता न हुई और उस पर और अधिक विचार

---

*गैस शब्द का भी विचित्र इतिहास है। यह यूरुप वालों के अन्ध विश्वास का द्योतक है। लोग पहले गैस के विषय में कुछ नहीं जानते थे, गैस दिखलाई नहीं पड़ती थी किन्तु गैस से भरे हुए वर्तन जब आग के पास लाये जाते थे तब उनमें धड़ाका होता था। पहले वैज्ञानिक लोग इसका कारण नहीं जानते थे, वे उसे कोई भूत, प्रेत समझते थे, एक वैज्ञानिक ने इसका नाम गीस्ट रक्खा जो कि फ्लेण्डर्स के लोगों की भाषा में भूत का द्योतक है। इसीसे अँगरेज़ी का 'गैस' शब्द बना है।

भी न हुआ, किन्तु गैस की शक्ति को काम में लाने का ध्यान लोगों को बना रहा। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में कोयले की गैस का आविष्कार हो गया था और लोगों का ध्यान इस ओर गया। जॉन बारबर नामक एक अँगरेज़ ने ऐसा गैस का इंजन बनाया जिसमें कि गैस को जलाकर पानी के पहिया की भाँति अग्नि की ज्वाला से पहिया चलाया जाता था।

यद्यपि इँगलैण्ड के लोगों ने मोटर के निर्माण में बहुत कुछ उन्नति की (मेगनेट द्वारा बिजली की चिंगारी से पैट्रोल की गैस में आग पहुँचाने का श्रेय लेंकास्टर नाम की अँगरेज़ी कार के निर्माता को है) तो भी गैस के इंजन के आविष्कार का श्रेय फ्रान्सीसी और जर्मन लोगों को है।

सन् १८६० में पहले पहल लेनोर (Le noir) नाम के एक फ़रासीसी ने पेट्रोल की गैस का इंजन बनाया। सन् १८७६ में ओटो और लेंगिन (Otto and Lengein) दो जर्मन आविष्कारकों ने चार चक्कर वाला इंजन बनाया। आजकल के भी मोटर इंजन प्रायः उसी प्रकार के होते हैं। पहले चक्कर द्वारा सिलिण्डर में हवा से मिली हुई गैस आती है, दूसरे चक्कर में वह गैस दबाई जाती है, गैस के दबने से उसमें शक्ति बढ़ जाती है, तीसरे चक्कर में गैस में बिजली की चिंगारी लगकर धड़ाका होता है, और बारूद में आग लगने से तोप के गोला फेंकने की सी शक्ति उत्पन्न होती है, वैसी ही शक्ति अन्य सिलिण्डरों में भी उत्पन्न होती है; जितने अधिक सिलिण्डर होते हैं उतनी ही अधिक शक्ति प्राप्त होती है।

वाष्प के इंजन से इस पेट्रोल के इंजन में कई सुभीते रहते हैं। सब से पहिला सुभीता तो यह है कि इसमें कोयले का पहाड़ नहीं लादना पड़ता और न 'काजल की कोठरी' में जाने वाले की भाँति ड्राइवर का मुँह काला होता है (चाहे

वह धूलि-धूसरित हो जाय। उसका मुँह तो तभी काला होता है जब कि कोई दब कर मर जाय) इसमें किफ़ायत के साथ काम अधिक होता है। जब तक मोटर खड़ी रहती है तब तक इंजन का कोई ख़र्च नहीं होता, रेल का इंजन जलता ही रहता है। बाहरी वायु के संसर्ग से उसकी गरमी बहुत कुछ नष्ट हो जाती है, पेट्रोल के इंजन में ठीक उसी जगह आग पहुँचाई जाती है जिस जगह कि पेट्रोल की गैस होती है। इस प्रकार के इंजन विना मोटर कार बड़ी भद्दी और भारी चीज़ होती और वायुयानों में भी विशेष उन्नति न होती क्योंकि हवा में उड़ने के लिए हलके इंजन की ज़रूरत होती है।

पाठकों को मोटर के सिद्धान्त का थोड़ा सा आभास हो गया होगा। पेट्रोल बहुत जल्दी उड़ता है और उसकी अपने आप गैस बन जाती है। पेट्रोल की टंकी से एक नली द्वारा पेट्रोल कारब्यूरेटर (Carburator) में पहुँचता है। वहाँ उसकी गैस बनती है और उसमें आवश्यक हवा की मात्रा मिल जाती है, जिससे कि विस्फोटक शक्ति (धड़ाका करने की ताक़त) बढ़ जाती है। वह गैस सिलिण्डर में पहुँचती है और उसमें मैगनैट या बैटरी से लग द्वारा बिजली की चिंगारी पहुँचती है। चिंगारी के पहुँचते ही गैस में धड़ाका होता है और पिस्टन उठती है। इसी चक्कर में मोटर में शक्ति उत्पन्न होती है।

मोटर के लिए यह अवश्य ज़रूरी है कि जब तक मोटर चालू न हो तब तक एक हैण्डिल द्वारा या बिजली के स्वयं-चालक (Self Starter) द्वारा पिस्टन घुमाई जाय। एक बार जब पेट्रोल में आग लग जाती है और पिस्टन को शक्ति मिल जाती है फिर तो वह घूमती रहती है और संचालक डण्डे को घुमाकर पहियों में गति उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार के इंजन को भीतर जलने वाला इंजन (Internal Cumbustion

Engine) कहते हैं क्योंकि इसमें आग पिस्टन के भीतर लगती है। इसके विपरीत रेल के इंजन में आग बाहर रहती है। आजकल इस प्रकार के इंजन, मोटरों के अतिरिक्त, खेत जोतने के ट्रेक्टरों, वायुयानों आदि अनेक गतिसम्बन्धी कामों में आते हैं।

प्रारम्भिक मोटरकारों में फ्रान्स की डीडियन और जर्मनी की डेमलर बहुत विख्यात हैं। मोटर को सस्ता बनाकर उसको लोकप्रिय बनाने में अमेरिका निवासी फोर्ड ने बहुत कुछ काम किया है। आराम और शान के कारण रोल्स रोइस बहुत प्रसिद्ध है। आजकल तो अनेक प्रकार की गाड़ियाँ बन गई हैं और सब एक से एक अच्छी हैं।

पेट्रोल ने (जो पहले निरर्थक समझा जाता था) मोटरकार के कार्य में विशेष सहायता दी है, परन्तु रबर की सहायता भी कुछ कम नहीं है। रबर की हालों के बिना मोटर की इतनी शीघ्र गति न होती। पहले पहल तो ठोस हालों का ही प्रयोग हुआ फिर आयर्लेण्ड निवासी 'डनलप' (Dunlop) की बनाई हवा से भरी, पोली हालों (Pneumatic Tyres) का प्रयोग होने लगा। इसके पश्चात् अलग होने वाले चक्कर तैयार होने लगे, जिनके कारण रास्ते में टायरों की मरम्मत का झगड़ा जाता रहा। इस प्रकार मोटरकार के निर्माण में कई उन्नतियाँ हुईं। मोटर की बॉडी में तो उन्नति करना कल्पना और कला का काम है और वह खूब हुआ। आजकल सुन्दर से सुन्दर भव्य बॉडियाँ तैयार होने लगी है। राजा महाराजाओं की मोटर की बॉडी सोने और चाँदी की भी होती हैं, किन्तु मशीन में तो फ़ौलाद का ही बोलबाला रहेगा। अब बिजली की भी मोटरें चल गई हैं। मोटर शान्ति और युद्ध के समय में एक-सा काम करती है।

मोटर से यात्रा में अनेक सुविधाएँ हो गई हैं, गरीब आदमियों के लिए लॉरी बड़ी काम की चीज़ है। आजकल लॉरियों और रेलों की प्रतिद्वन्दता खूब बढ़ी हुई है। शिमला, काश्मीर आदि पार्वत्य प्रदेशों में जाने के लिए लोग रेल की अपेक्षा मोटर का प्रयोग अधिक पसन्द करते हैं किन्तु अभी जो निश्चयता रेल में रहती है वह मोटर में नहीं है। लॉरियाँ बोझा ढोने का काम भी खूब करती हैं। बड़े बड़े शहरों में कूड़ा भी लॉरियों के द्वारा ही ढोया जाता है। मोटर लॉरियाँ कच्ची सड़कों पर भी चल सकती हैं किन्तु वहाँ अभी बैल गाड़ियों का ही साम्राज्य है। हर्ष की बात है कि भारतवर्ष में भी मोटर लॉरियाँ बनने की आयोजना हो रही है।
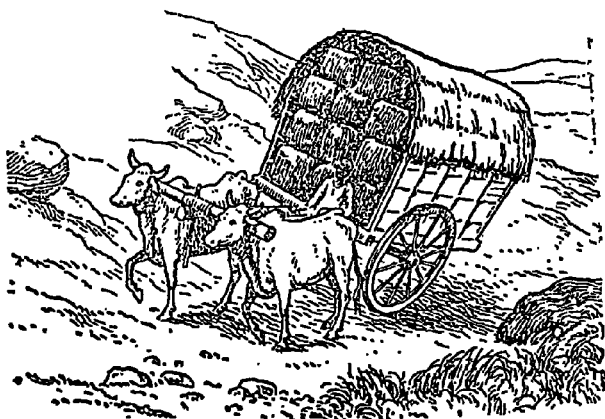
अध्याय १७

पन-डुब्बी नाव

'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।' जिस प्रकार शान्ति के समय की आवश्यकताएँ होती हैं, उसी प्रकार युद्ध के समय में भी कुछ विशेष आवश्यकताएँ होती हैं। पन-डुब्बी नाव का जन्म और विकास युद्ध की ही आवश्यकताओं में हुआ है।

पहले पहल पन-डुब्बी नाव का प्रयोग अमरीका के स्व-तन्त्रता-संग्राम में हुआ था। डेविड बुशनैल ने एक छोटी सी पन-डुब्बी नाव बनाई थी जो कछुए की सी शकल की होने के कारण टर्टिल (Turtle) कहलाती थी। यह नाव पानी में ऊर्ध-मुख (Vertically) खड़ी होती थी। इसमें केवल एक ही मनुष्य के बैठने की गुंजाइश रहती थी। जब इसका ऐकाकी कप्तान जलमग्न होना चाहता था तब वह अपने भारगृह (Ballast अर्थात् जहाज़ का वह हिस्सा जिसमें कि उसको स्थिर रखने के लिए बोझा रक्खा जाता है) के भीतर पानी ले लेता और ज़ब ऊपर आना चाहता तब उस पानी को पम्प से बाहर निकाल देता। उसको चलाने के लिए दो खेवे भी बाहर निकले रहते थे जो भीतर से ही चलाये जा सकते थे। इस नाव में ऐसी आयोजना की गई थी कि वह जहाज़ों में छेद करके कोई विस्फोटक (Explosive) द्रव्य रख आय और उसके फटने के पूर्व लौट सके, किन्तु वह नौका ब्रिटेन के जहाज़ों से पार न पा सकी, क्योंकि उनके नीचे का हिस्सा ताँबे से मढ़ा हुआ था। यह प्रथम प्रयास निष्फल रहा और अन्त में वह नौका

डूब कर शोक-जनक अन्त को प्राप्त हुई। उसी युद्ध में एक और नाव बनी, उसका नाम हंडले (Hundley) था। वह आक्रमण में तो सफल हुई किन्तु शिकार के साथ शिकारी भी शिकार बन गया।

जिस भाप की शक्ति से बड़े जहाज़ चलते थे उसका इन छोटी नावों में प्रयोग करना असम्भव था, क्योंकि उसके लिए कोयला चाहिए था और कोयले के जलने के लिए हवा की आवश्यकता थी। हाथ की शक्ति भी अधिक काम नहीं दे सकती थी किन्तु पेट्रोल की मोटरों और बिजली की मोटरों ने इस कठिनाई को दूर कर दिया। पानी के ऊपर पेट्रोल से काम लिया जाने लगा और पानी के भीतर बिजली की सहायता से खेवे संचालित होने लगे। नई रीति की पन-डुब्बी नाव पहले पहल होलेण्ड (Holland) नाम के एक आयलैंण्ड निवासी युवक ने बनाई। उसकी बनाई हुई सात नावें असफल रहीं। परन्तु आठवीं नाव सफल हुई। रुपया देकर उस प्रकार की नावें बनाने का अधिकार इँगलैण्ड, जर्मनी व अमरीका आदि देशों ने उससे ख़रीदा। फिर सब देशों ने अपनी अपनी पन-डुब्बी नावें बनाईं। वह गत महायुद्ध के छिड़ने से पन्द्रह दिन पूर्व ही मर गया, नहीं तो वह अपने आविष्कार की सफलता और विफलता दोनों ही देख लेता।

जर्मन लोगों ने इस कला में बहुत उन्नति की। पेट्रोल में बिजली से आग लगने का भय रहता है। उन्होंने डेसिल ऑयल इंजन का आविष्कार करके पेट्रोल में आग लगने के भय का भी निराकरण कर दिया। (आजकल इस प्रकार के इंजन मोटर लारियों में भी लगने लगे हैं; इनमें पेट्रोल के स्थान पर मिट्टी के तेल से काम लिया जाता है जर्मन लोग अँगरेजों की नौ-सेना से खुली लड़ाई लड़ने में असमर्थ थे, इसलिए उन्होंने पन-डुब्बी

नावों की उन्नति में अपने दिमाग़ की पूरी शक्ति लगादी और यू-बोट (U-boat) का निर्माण किया। इन नावों में छोटी छोटी विस्फोटक नलिकाएँ (Torpedoes) रहती थीं जो बिजली से संचालित होती थीं और जहाज़ से टकरा कर फट जातीं।
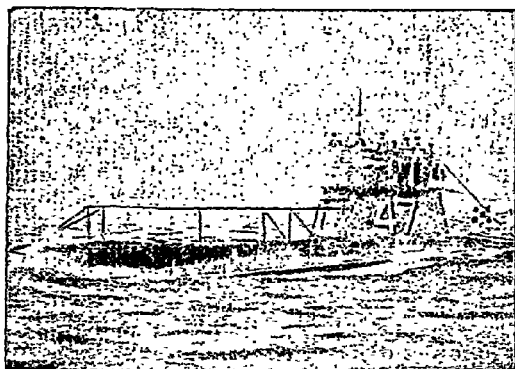
पनडुब्बी नाव

तथा उसको डुबा देती थीं। इस प्रकार की नावें स्वयं ख़तरे से बची रहतीं और शत्रु के जहाज़ों को नष्ट करने में सफल होती थीं। टॉरपीडो का आकार बड़े सिगार का सा होता था। यू-बोट में हवा को शुद्ध करने के लिए ओषजन (Oxygen) का भी प्रबन्ध रहता था।

यू-बोट और टॉरपीडो मित्र सेना के लिए भयंकर रोग थे परन्तु कोई ऐसा भयंकर से भयंकर रोग नहीं जिसका कि इलाज न निकाला गया हो। 'सेर को सवा सेर' हमेशा पैदा हो जाता है। अँगरेज़ लोगों ने यू-बोट से भी बड़ी पनडुब्बी नावें बनाईं। इनसे तो जर्मन लोगों को इतना भय न था जितना कि पनडुब्बी नावों की उन शिकारी नावों से था जिनका कि मित्र-दल की

ओर से प्रयोग होता था।

अँगरेज़ नाविकों ने पानी के भीतर पनडुब्बी नावों को खोजने की एक विचित्र तरकीब निकाली थी। रास्ता देखने और दुश्मन-जहाज़ों पर आक्रमण करने के लिए उनके नौका-नेत्र (Periscope) नाम की नलिकाएँ जल से बाहर निकली रहती थीं, इस प्रकार जब नौका-नेत्रों द्वारा पनडुब्बी नावों का पता लगने लगा तब उन लोगों ने ऐसी आयोजना निकाली कि जब चाहें उन नेत्रों को भीतर करलें, किन्तु इस तरकीबसे ये थोड़े ही दिन बच सके। ब्रिटेनके डुब्बक नाविकों ने एक नई तरकीब निकाली। वे पानी पर कुछ खाद्य पदार्थ डाल कर नीचे घुस जाते थे। खाद्य पदार्थों के लिए समुद्री चिड़ियाँ उन जहाज़ों की ओर जातीं। समुद्र के पक्षी पानी के भीतर की चीज़ को बहुत नीचे तक देख लेते हैं। अँगरेज़ नाविकों ने अपनी पनडुब्बी नावों से खाद्य पदार्थ डालकर उन समुद्री चिड़ियों को इतना हिला लिया था कि जहाँ वे पानी में पनडुब्बी नाव को देखतीं वहीं तुरन्त ही उसकी ओर झुकतीं। ये पक्षी जर्मन पनडुब्बी नावों की खोज लगाने और फिर अँगरेज़ी शिकारी नावों द्वारा इनकी खोज मिटवाने में बड़े सहायक हुए।

अँगरेज़ी जहाज़ अपने पीछे धूँए का पर्दा उत्पन्न करके उसकी ओट से टेढ़े सीधे मार्ग का अनुसरण करके पनडुब्बी नावों के आक्रमण से बच जाते थे। पीछे से ऐसे यंत्र भी निकल आये जिनके द्वारा पानी के भीतर की ज़रा सी आहट सुनाई पड़ने लगे। इन सब कारणों से मित्र दल के विरुद्ध जर्मन पनडुब्बी जहाज़ अधिक सफलता न पा सके। ठीक ही कहा है कि 'बुद्धिर्यस्य बलम् तस्य'।

अध्याय १८

वायुयान

(हवाई जहाज़)

वायुयान में बैठि नर, नभ में करहिं विहार।
उड़ति मनहुँ विग्यान की, कीरति पंख पसार॥

उड़ने का इतिहास

मनुष्य बहुत समय से उड़ने का स्वप्न देखता चला आता है। उसने जल और थल पर बहुत काल से विजय प्राप्त कर ली थी, किन्तु आकाश अभी उसके लिए एक प्रकार दुर्गम हो रहा था। यद्यपि हम प्राचीन काल में 'पुष्पक' आदि विमानों के आकाश मार्ग से जाने का वर्णन पढ़ते हैं तथापि हमको यह नहीं मालूम कि वे किस प्रकार के होते थे, वे भौतिक बल से चलते थे या योग बल से। प्राचीन काल में यदि यह कला रही भी हो तो बहुत काल से लोग इसे भूल गये थे। देवताओं के विमानों तथा कथाओं के उड़न-खटोलों एवं परियों के इन्द्र लोक में आने-जाने का वर्णन पढ़ और सुन कर मनुष्य का मन गगन विहारी बनने के लिए लालायित रहता था। कभी-कभी लोग स्वप्न में उड़ भी लिया करते थे।

मनुष्य की बनाई हुई चीज़ों में लोग पतंग को उड़ते देखते थे। इसके अतिरिक्त हलकी हवा से भरे हुए गुब्बारे भी उड़ते दिखलाई पड़ते थे। पहले यह गुब्बारे गरम हवा के बनते थे (जैसे कि आजकल आतिशबाज़ी वाले बनाते हैं) क्योंकि

गरम हवा साधारण हवा से हलकी होती है, किन्तु ये गुब्बारे हवा में उतनी ही देर तक रह सकते थे जितनी देर तक कि हवा ठण्डी न हो। कहा जाता है कि यूरोप वालों से पहले चीन वालों ने सत्रहवीं शताब्दी में गुब्बारे बनाये थे। सन् १७६६ में केविन्डश नामक एक अँगरेज रसायनिज्ञ ने हाइड्रोजन गैस का आविष्कार किया। यह गैस साधारण हवा से छः हिस्सा हलकी होती है। उस समय से बैलून में इसका प्रयोग होने लगा जिससे वे अग्नि और धुएँ पर निर्भर न रह कर आकाश में चिरकाल तक स्थित रहने योग्य बन गये। मनुष्य उनमें बैठकर उड़ने भी लगे, किन्तु गुब्बारों में मनुष्य वायु के अधीन था, जिधर वायु ले गई उधर ही चले गये। फिर गुब्बारा सहज में उतरता भी न था उससे कूदने के लिए छाते लगाने पड़ते थे। इस कठिनाई को देखकर वैज्ञानिक लोग इस बात के उद्योग में लग गये कि वे ऐसे वायुयान बनाएँ जो यन्त्र बल के कारण वायु के अधीन न रहें अर्थात् उनकी गति की दिशा और क्रम इच्छानुकूल बदला जा सके।

गति को नियंत्रित करने के लिए एक विशेष प्रकार की संचालक शक्ति की आवश्यकता थी। रेल और जहाजों में वाष्प की संचालन शक्ति का प्रयोग होता था, किन्तु वाष्प के इंजन हलके नहीं बनते थे। वाष्प शक्ति से भी चलने वाली एक हवाई नाव बनाई गई थी, किन्तु वह अधिक सफल न हुई। इन्हीं दिनों में पेट्रोल-इंजनों का आविष्कार हुआ था। यह हलके होने के कारण सुगमता से हवाई यानों में रक्खे जा सकते थे। सन् १९०३ में राइट (Wright) बन्धुओं में से एक पहली बार गैस का इंजन लगाकर उड़ा। यद्यपि प्रत्येक देश वालों ने थोड़े बहुत आगे पीछे वायुयान बनाने में सफलता प्राप्त की तथापि प्रथम सफल उड़ाकू होने का श्रेय राइट

बन्धुओं को ही है।

राइट बन्धुगण, (ऑर्विल और विलवर) अमेरिका के ओहियो (Ohio) नगर में बाइसिकल की मरम्मत की दुकान करते थे। इन लोगों को प्रारम्भिक शिक्षा के अतिरिक्त कॉलेज की उच्च शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था किन्तु ये लोग हाथ से काम करना जानते थे और मशीनों का थोड़ा व्यवहारिक ज्ञान रखते थे। सच्ची लगन और सावधानी के साथ परिश्रम करना इनका धर्म था। दोनों भाई उड़ान के विषय पर घंटों वहस करते थे। घंटों घास पर पड़े पड़े चिड़ियों की उड़ान का और हवा का अध्ययन करते। जो कुछ उड़ान के सम्बन्ध में पढ़ने को मिलता सावधानी से पढ़ते, पहले किये हुए प्रयोगों के गुण दोषों पर वहस करते और अन्त में दो शरीर और एक मस्तिष्क होकर काम करते। अपनी सफलता का विना विज्ञापन किये ही ये लोग सैकड़ों वार छोटी छोटी उड़ान उड़े और अपने वनाये हुए यानों की त्रुटियों को इन्होंने दूर किया। थोड़ी सफलता प्राप्त करके वे हर्ष और अभिमान से पागल नहीं हुए थे। वे निरन्तर परिश्रम करते रहे और जव तक चौवीस मील न उड़ लिये तव तक उन्होंने चैन न लिया।

सन् १९०६ में उन्होंने अपनी मशीन का अधिकार रक्षित कराया तव भी उन्होंने लोगों से उसकी चर्चा तक न की। अन्त में सन् १९०८ में उन्होंने अपने यंत्र का सार्व-जनिक प्रदर्शन किया। चारों ओर से साधुवाद मिला। उनकी बुद्धिवल और प्रतिभा के कारण यूरुप के वड़े वड़े नरेश उनसे मिलने गये। सच्चा परिश्रम कभी निष्फल नहीं जाता।

जिन दिनों ये युवक, अपनी दूकान का काम छोड़ कर एक टूटी हुई उड़ने वाली मशीन के सुधारने में अपना दिमाग़ लड़ा रहे थे, उनके पितृदेव विशप राइट ने (Bishop Wright) एक दिन उनकी दूकान में आकर कहा था "क्या मूर्खता कर

रहे हो, तुम नहीं उड़ सकोगे, जब तक यह दुनिया है तब तक कोई नहीं उड़ सकेगा, यदि कोई उड़ भी सकेगा तो वह 'ओहियो' का न होगा"। इन उत्साही युवकों ने अपने पिता के निराशावाद को मिथ्या प्रमाणित कर दिया। वायु-मण्डल की विजय का श्रेय, उसी ओहियो नगर निवासी, बाइसिकिल के सुधारने वाले, कॉलेज की डिगरियों से अपरचित राइट युवकों को ही मिला। परिश्रय और अध्यवसाय ही सच्ची शिक्षा है।

वर्तमान वायुयानों के उड़ने के सिद्धान्त तथा उनकी बनावट

पहिले पहल हवाई जहाजों में गैस भी रहती थी और इंजन भी रहता था, किन्तु उड़ने वाले वैज्ञानिकों ने चिड़ियों के उड़ने का विशेष अध्ययन करके इस बात का निश्चय किया कि उड़ने के लिए हवा से हलका होना आवश्यक नहीं है।
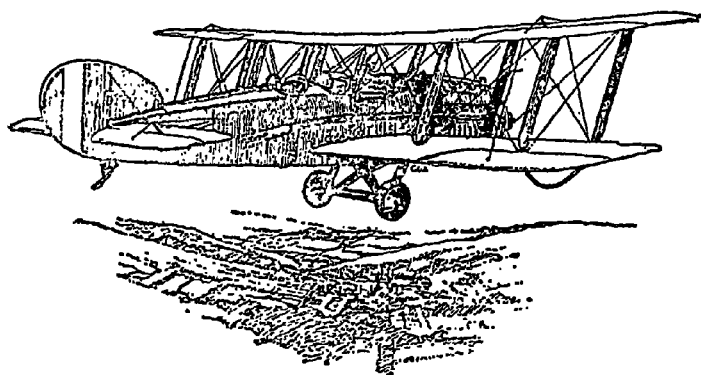
वायुयान

चिड़ियाँ अपने परों को फटफटा कर हवा में वेग उत्पन्न कर लेती हैं और वेग उनको ऊपर उठाए रहता है। पतंग हवा

से भारी होती हुई भी उड़ती रहती है। लोगों ने पतंग के उड़ने के सिद्धान्तों का अध्ययन किया। पतंग ने इस विज्ञान के इतिहास में बहुत कुछ काम किया है।

जहाज़ों और मोटर नौकाओं के खेवे पानी में पीछे की ओर से वेग उत्पन्न कर उनको आगे बढ़ाते हैं। जो वस्तु कुछ भी ऊपर को उठी होती है वह पीछे से वेग मिलने पर ऊपर को उठती चली जाती है। चिड़ियों का भी मुँह ऊपर को उठा रहता है। उसी सिद्धान्त के अनुसार हवाई जहाज़ों में केवल दो पहिये होते हैं और वे इस प्रकार रक्खे जाते हैं कि हवाई जहाज़ का मुँह ऊपर को उठा रहे। हवाई जहाज़ मोटर की शक्ति से थोड़ी दूर थल पर चल कर हवा में ऊपर उठने लगता है।

आजकल तो हवाई जहाज़ों की गति का पूरी तरह से नियंत्रण ही नहीं होने लगा है वरन् वे नट की तरह आकाश में कलाबाज़ी भी खाने लगे हैं। इन पहियों के ऊपर हवाई जहाज़ का शरीर होता है जो कि मछली या लौकी के प्रकार का होता है। इसी मछली व लौकी के आकार वाले शरीर में दो पंख लगे रहते हैं, जिन वायुयानों में परों की एक पंक्ति होती है वे 'मोनोप्लेन' कहलाते हैं और जिनमें दो पंक्तियाँ होती हैं वे 'बाई प्लेन' कहलाते हैं। अब ऐसे भी वायुयान बने हैं जो स्थल पर न चल कर जल के ऊपर से हवा में उठ सकते हैं। भविष्य में हवाई बाइसिकलें बन जाने की भी सम्भावना है।

वायुयान के लाभ

वायुयान के अनेक लाभ हैं। इसकी गति मोटर और रेल की गति से अधिक तीव्र है। वायुयान दो सौ तीन सौ मील प्रति घंटे की गति से चल सकते हैं। इनके लिए रास्ते में कोई

रुकावट नहीं होती। तीर की तरह सीधे जाने के कारण दूरी को और भी जल्दी तै कर लेते हैं। इनके लिए न सड़क बनाने की आवश्यकता है और न पुल बाँधने की। वायुयानों के कारण महीनों की यात्रा सप्ताह में हो जाती है। अब विलायत से एक सप्ताह में ही डाक आ जा सकती है और पार्सल इत्यादि भी सुगमता से भेजे जा सकते हैं। अब विलायत वाले भी सुभीते से हिन्दुस्तान के रसीले रसालों का रस आस्वादन कर सकते हैं। वायुयान के द्वारा समय की बचत ही नहीं हुई वरन् इसके कारण बहुत से दुर्गम स्थान भी सुगम हो गये हैं। इसके द्वारा बदरी केदारनाथ जी की यात्रा दुर्गम नहीं रही। वायुयान की उपयोगिता बढ़ाने के लिए बेतार के तार का भी साथ ही साथ आविष्कार हो गया था। वायुयान में बैठे हुए बेतार के तार द्वारा संसार का भी पता रह सकता है।

युद्धक्षेत्र में वायुयान का बड़ा उपयोग होने लगा है। अब इसके कारण 'दुर्ग' दुर्ग (जिनमें मुश्किल से जाया जा सके) नहीं रहे। खाई भी दुश्मन की अधिक रक्षा नहीं कर सकती। वायुयानों के* द्वारा सारी सैनिक परिस्थिति का अवलोकन ही नहीं किया जा सकता वरन् उस पर से बम बरषा करके संहार भी किया जा सकता है। यह विज्ञान का दुरुपयोग है। जिस प्रकार पूर्व काल में राष्ट्र अपनी जल शक्ति पर गर्व करते थे उसी तरह अब वायु-शक्ति पर गर्व किया जाता है।

वायुयान के सामाजिक उपयोग भी बहुत हैं। अब मित्रगण

---

* गत महायुद्ध के दिनों में जर्मनी में 'जेप्लिन' नाम के हवाई जहाजों ने (जो कि गैस के सहारे ऊपर उठते थे) बहुत नाम पाया था किन्तु वे हलके वायुयानों के सामने नहीं ठहर सके। 'जेप्लिन' नामक काउण्ट पदवी धारी एक उच्च कुलीन व्यक्ति ने ये बनाये थे।

एक दूसरे के पास उड़ कर जा सकेंगे और उन्हें पंख न होने की शिकायत करने का अवसर न मिलेगा। डाक भी अब शीघ्रता से आने जाने लगी है। विगड़ने सड़ने वाली चीज़ें अब और भी अधिक शीघ्रता से स्थानान्तर में पहुँचाई जा सकेंगी। लोग रूस, फारिस आदि स्थानों में विश्राम करते हुए बिलायत सात दिन में पहुँच जाते हैं। सम्भव है कुछ दिनों बाद रात में उतरने की भी ज़रूरत न पड़े और यह सफ़र चार दिन का ही रह जाय। वायुयान की अभी बहुत सी सम्भावनाएँ हैं जो भविष्य के गर्भ में छिपी हुई हैं।

भारतवर्ष में देहली, बम्बई आदि नगरों में उड़ाकू क्लब स्थापित हो गये हैं, जिनके द्वारा नव-युवक गण उड़ने की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। हवाई उड़ान के क्षेत्र में साहस पूर्ण कार्यों के लिए बहुत कुछ स्थान है। मनमोहन प्रभृति सज्जनों की भाँति और भी भारतीय युवक इस क्षेत्र में नाम पैदा कर सकते हैं।

अध्याय १६

एडीसन और ग्रामोफ़ोन

Genius is one per cent inspiration and ninety-nine per cent perspiration.

(प्रतिभा एक प्रतिशत स्फूर्ति है और निन्यानवे प्रतिशत श्रम है।)

—एडीसन

टॉमस एलावा एडीसन ने एक हज़ार से अधिक छोटे-बड़े नये-नये आविष्कार किये हैं, परन्तु इनका नाम ग्रामोफ़ोन के नाम से अधिक सम्बन्धित है। इनका जन्म अमरीका के 'मीलान' नामक नगर में ११ फर्वरी १८४७ को हुआ था। इनके पिता का नाम सेमुअल एडीसन तथा माता का नाम लैंसी इलियट था। इनकी माता एक योग्य महिला थीं, यही कारण है कि एडीसन में सुशीलता तथा सदाचारिता के चिह्न बचपन से ही विद्यमान थे। उनकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी। एडीसन का स्वास्थ्य बचपन से ही ख़राब था इस के कारण वे स्कूल नहीं भेजे गये। डाक्टरों ने भी बालक एडीसन के दिमाग़ को कमज़ोर समझ कर उसे अधिक पढ़ने लिखने का कार्य करने के लिए मना कर दिया था। इस कारण एडीसन अधिक शिक्षा प्राप्त न कर सके। जो कुछ शिक्षा उन्हें मिली वह उनकी माता के द्वारा ही दी गई थी। उनके पिता ने यह नियम कर दिया था कि प्रत्येक पुस्तक को समाप्त कर लेने पर वे उन्हें कुछ पुरस्कार देते। इस प्रकार बालक एडीसन की जानकारी बहुत कुछ बढ़ गई और उसी के साथ साथ उन्होंने स्वतन्त्र रूप से विचार करने

ग्रामोफ़ोन के आविष्कर्ता एडीसन

की शक्ति प्राप्त करली। जिस नई वस्तु को वह एक वार देखते, उसी के बारे में वह अपने माता-पिता से सुक़राती प्रश्न* पूछते। जव तक इनको सन्तोप जनक उत्तर न मिल जाता तव तक उनका पीछा न छोड़ते। एडीसन ने अपने उत्तर कालिक जीवन में अपने अध्यवसाय के कारण शिक्षा की कमी को पूरा कर लिया था। उसने विना गणित शास्त्र के ज्ञान के ही अपने धैर्य और परिश्रम के कारण इतने आविष्कार कर लिये थे। वह शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा प्रयोगात्मक व्यवहारिक ज्ञान को अधिक महत्व देता था।

एडीसन का वाल्यकाल आपत्तियों से पूर्ण रहा। एक वार वे नहर में डूवते डूवते वचे। एक वार और ऐसी ही दुर्घटना हुई। खल्यान पर आग करते हुए उन्होंने सारे नाज में आग लगादी और अन्य लड़कों को शिक्षा देने के लिए सव के सामने उनके कोड़े लगाये गये। इनकी माता इनको किसी प्रकार के अनुभव प्राप्त करने से नहीं रोकती थी। ऐडीसन ने दस वर्ष की अवस्था में ही रसायन शास्त्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। शिल्प-कला के वारे में वे जो कुछ भी पढ़ते, सुनते अथवा देखते, वे उसे क्रियात्मक रूप देकर अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे। यही कारण है कि इतनी कम अवस्था में उन्होंने अपने घर पर एक छोटी सी रसायन-शाला भी खोल ली। खेल कूद में व्यस्त रहने की अपेक्षा वे अपनी रसायनशाला में प्रयोग करते रहना अधिक पसन्द करते थे। इनकी आर्थिक अवस्था वहुत अच्छी नहीं थी,

* सुक़रात प्रश्न पूछ पूछ कर दूसरों के मुख से सत्य सिद्धान्त निकलवा लेता था।

इसलिए इनको अपनी प्रयोग-शाला का खर्च अधिकतर समाचार पत्र बेचकर ही चलाना पड़ता था। साहसी तथा आशावादी व्यक्ति संसार में सब कुछ कर लेते हैं। एडीसन रेल में समाचार पत्र बेचा करते थे। केवल समाचार पत्र विक्रेता की स्थिति से सन्तुष्ट न रह कर इन्होंने गार्ड के डब्बे से एक निजी समाचार पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया। इस पत्र का आदि से लेकर अन्त तक सब कार्य एडीसन को ही करना पड़ता था। वे अपने पत्र के मुख्य समाचार अगले स्टेशनों पर तार द्वारा भिजवा देते थे इससे उनके अखबार की माँग बहुत बढ़ गई थी। उसी डब्बे में इन्होंने एक प्रयोगशाला की स्थापना की। एक दिन कुछ प्रयोग करते समय रेल के तख्ते पर किसी विस्फोटक द्रव्य के गिरने से डब्बे में आग लग गई। गार्ड ने आकर उनके दो तमाचे लगाये और प्रयोगशाला की शीशियों को बाहर फेंक दिया। फल यह हुआ कि प्रयोगशाला भी नष्ट हो गई और थप्पड़ पड़ने के कारण वे एक कान से बहरे भी हो गये; इतने पर भी वे इस घटना से विचलित नहीं हुए और उत्साह से कार्य करते ही रहे।

अपने इंजन-ड्राइवर मित्रों से एडीसन ने इंजन की मशीनरी का ज्ञान प्राप्त किया और तारघरों में जाकर तार का काम सीखा। कुछ समय पश्चात् उन्हें तार के काम में नौकरी भी मिल गई थी। परन्तु वे दिन की अपेक्षा रात की ड्यूटी अधिक पसन्द करते थे क्योंकि उस समय शान्ति-मय वातावरण होने के कारण उन्हें सोचने के लिए अच्छा अवसर मिल सकता था। रात में ड्यूटी न मिलने के कारण वे कई स्थानों से अपनी नौकरी छोड़ चुके थे। नौकरी करते हुए वे अपने अवकाश के समय वैज्ञानिक प्रयोग अवश्य करते रहते थे। आर्थिक-संकट ही उनके मार्ग में बाधक था। वे नौकरी करना पसन्द नहीं करते थे परन्तु जीवन-निर्वाह के लिए उन्हें और कोई सहारा भी तो न था।

कहते हैं कि जहाँ का अन्न-पानी भाग्य में लिखा होता है मनुष्य वहीं पहुँच जाता है। एडीसन भी आर्थिक समस्या से दुखी होकर न्यूयार्क की ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर इनको गोल्ड इण्डीकेटर नामक एक कम्पनी में ठहरने को स्थान मिला। बिल्ली के भाग्य से छींका टूट पड़ा, एक दिन कारखाने की मशीन में कुछ ख़राबी हो गई जो उस कम्पनी के योग्य कार्य कर्ताओं से भी ठीक न हो सकी। चतुर एडीसन ने उसको ठीक कर कम्पनी के मालिक पर अपने कार्य कौशल और यंत्र सम्बन्धी ज्ञान की धाक जमा दी। उसके फलस्वरूप ३०० डॉलर महावार पर उन्हें वहाँ नौकरी मिल गई। वहाँ पर उन्होंने कम्पनी के कार्य में सुविधा उत्पन्न करने वाले कई नये आविष्कार किये।

इन आविष्कारों से प्रसन्न होकर कम्पनी के मालिक ने युवक एडीसन को बुलाया और उनसे आविष्कारों का मूल्य माँगने को कहा। एडीसन पाँच हज़ार चाहते थे किन्तु उनका इतनी रक़म माँगने का साहस नहीं हुआ। वे तीन हज़ार कहना ही चाहते थे कि उन्होंने कुछ सोच विचार कर कम्पनी के मालिक से कह दिया कि वे ही जो कुछ मुनासिब समझें दे दें। कम्पनी के मालिक ने पूछा "क्या चालीस हज़ार डॉलर पर्याप्त होंगे?" एडीसन अपनी आकस्मिक समृद्धि से आश्चर्य-चकित होकर प्रसन्नमुख घर लौटे। उन्होंने नवागत सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं किया। धीरे धीरे वह धन अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों में काम आता रहा।

एडीसन ने तार के काम में बहुत सी उन्नतियाँ की। एक ही तार पर कई संवाद भेजने की विधि उन्होंने निकाली। बिजली की रोशनी के लिए छोटे छोटे लम्पों के ईजाद करने में उन्होंने दिन रात एक कर दिया। कहा जाता है कि एक बार

लम्प की सफलता देखने के लिए एडीसन और उसके साथी लगातार चालीस घंटे बैठे रहे थे। लड़ाई के दिनों में युद्ध की सामग्री तैयार करके उन्होंने बड़ी देश सेवा की; जो वस्तुएँ बाहर से आती थीं उन्हें अमरीका में तैयार कर अपने देश को विजय श्री प्राप्त कराने में वह सहायक हुए।

एडीसन ने टेलीफ़ोन के आविष्कारक ग्रेहम बेल से दोस्ती करली थी, उसी के फलस्वरूप उन्होंने सन् १८७७ में बात करने वाली मशीन अर्थात् ग्रामोफ़ोन का आविष्कार किया। पहले पहल जब उन्होंने लोगों से बात करने वाली मशीन के सम्बन्ध में वार्तालाप किया तब लोग उनकी बात को सुनकर हँसे, एडीसन के सहयोगी लोग ही फोनोग्राफ़ की सफलता में सन्देह करते थे। जब उनकी प्रारम्भिक मशीन ने उनके कहे हुए 'Mary has a little lamb शब्दों को स्पष्ट रूप से दुहरा दिया तब लोग आश्चर्य-चकित रह गये। एक आदमी जिसने कि एडीसन की सफलता के सम्बन्ध में सिगरेट के एक बक्स की शर्त बदी थी फ़ोनोग्राफ़ के शब्दों को सुन कर आकाश की ओर देखता हुआ भौंचक्कासा रह गया। एडीसन के सहकारी लोगों के हर्ष का पारावार न रहा। वे लोग उनके चारों ओर मण्डल बाँध कर नाचने लगे। इसके पश्चात् भी एडीसन ने इस यंत्र में बहुत उन्नति की। फोनोग्राफ द्वारा केवल इस्पीसी (Specie) शब्द को शुद्ध और स्पष्ट निकालने के लिए वह एक वर्ष तक रोज़ नियम-पूर्वक परिश्रम करता रहा था। वह अपनी बनाई हुई वस्तु को जब तक उत्तमता की सीमा तक नहीं पहुँचा देता था तब तक विश्राम लेना नहीं जानता था।

इस यंत्र का आविष्कार टेलीफ़ोन से ही हुआ था टेलीफ़ोन के किसी यंत्र को एडीसन साहब एक सुई की सहायता से सुधार रहे थे। सहसा उससे कुछ शब्द उत्पन्न हुआ। इसीसे एडीसन को यह

ख्याल हुआ कि सुई के कम्पनों द्वारा किसी चैंदी या पत्तर में कम्पन उत्पन्न कर शब्द पैदा किया जा सकता है। टेलीफ़ोन की व्याख्या करते समय शब्द की तरंगों के विषय में आवश्यक प्रकाश डाला जा चुका है। शब्द की तरंगें जल की तरंगों की ही भाँति ऊँची नीची होती हैं, उनमें भी पर्वतों के से शिखिर और घाटियाँ होती हैं। शब्द का प्रसार तरंगों द्वारा ही होता है।

जल की तरङ्गों का उतार चढ़ाव

जब हम कोई बात कहते हैं तो अपने चारों ओर के वायुमण्डल में तरङ्गें उत्पन्न कर देते हैं और वे तरङ्गें अपनी तरङ्ग-संतति उत्पन्न करके कान तक तरङ्गों का तारतम्य उत्पन्न कर देती हैं। ये तरङ्गें काल्पनिक तरङ्गें नहीं हैं। एडीसन के पूर्व भी इन तरङ्गों को धूँए से काले किए काँच पर अङ्कित किया गया था, किन्तु किसी ने उनका व्यवहारिक लाभ नहीं उठाया था।

हमारे प्रत्येक शब्द का व्यक्तित्व होता है। जब सेट पर गाना अङ्कित किया जाता है तब छोटी से छोटी आवाज़ की उतार चढ़ाव से उसमें कहीं गहरे और कहीं उभरे अङ्क बन जाते हैं। जब सुई इन पर चलती है तब इन्हीं अङ्कों के अनुकूल उठती और गिरती है। उससे लगा हुआ अबरक का पत्तर हिलने लगता है और आवाज़ उत्पन्न कर देता है। जिस डब्बी में यह पत्तर लगा रहता है उसे शब्द सम्पुट वा साउण्ड बॉक्स (Sound box) कहते हैं।

एडीसन ने जो पहला फ़ोनोग्राफ़ बनाया था वह बड़ा भारी और भद्दा था। उसको आजकल के से गोल तवों में सफलता नहीं हुई थी। उसने पहले पहल पतली पत्ती पर जो कि एक चूड़ी नुमा गिलास पर चिपकी रहती थी शब्द को अङ्कित किया था। आवाज़ सुनने के लिए चूड़ी हाथ से घुमानी पड़ती थी। पीछे से इस यंत्र में बहुत कुछ उन्नति हुई है। चूड़ियों के स्थान में
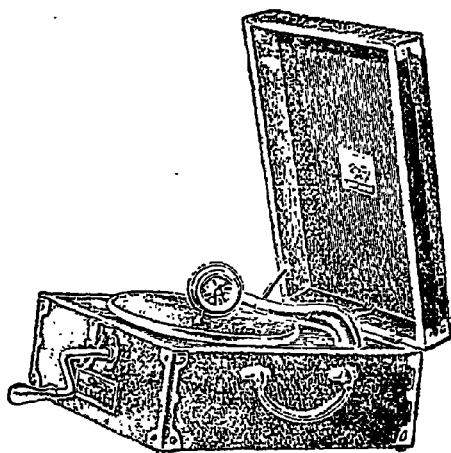
पोर्टेबिल ग्रामोफ़ोन

अब तवे काम में लाये जाते हैं और तवों के रिकॉर्डों (Record) को अब घड़ी की सी कमानी के यांत्रिक बल से घुमाया जाता है। आजकल अब तो ग्रामोफ़ोन में चाबी देने की भी आवश्यकता नहीं रही। बिजली की शक्ति से तवा अपने आप घूमता रहता है। ग्रामोफ़ोन को लाउड स्पीकर में लगा देने से विवाह बरातों और उत्सवों में हजारों मनुष्य उसके द्वारा निकले हुए गाने को बड़ी आसानी से सुन सकते हैं। आजकल के ग्रामोफ़ोन में बड़े बड़े भौंपे लादने की भी ज़रूरत नहीं रहती। आजकल हाथ में ले जाने वाले पोर्टेबिल ग्रामोफ़ोन भी बन गये हैं।

ग्रामोफ़ोन की प्लेटें काफ़ी सख़्त होती हैं। आवाज़ पहले पहल उन पर अङ्कित नहीं की जाती है। आवाज़ मोम के से

अध्याय १०

फ़ोटो ग्राफ़ी

फ़ोटो ग्राफ़ी का शब्दार्थ सूर्य-चित्रण है। चित्रकला तो बहुत प्राचीन है, भारत के धार्मिक और साहित्यक ग्रन्थों में चित्रकला का बहुत कुछ उल्लेख मिलता है और अजन्ता आदि की गुफ़ाओं में प्रायः डेढ़ सहस्र वर्ष पुराने चित्र भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार और देशों में भी चित्रकला बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। किन्तु प्रकाश द्वारा यांत्रिक पद्धति से चित्र खींचने की कला आधुनिक है।

सन् १७७७ में शील (Scheele) नाम के एक स्वीडन निवासी रसायनज्ञ ने बतलाया था कि चाँदी के लवणों पर सूर्य का प्रकाश पड़ने से वे काले पड़ जाते हैं। बहुत से लोगों ने आँख में डालने के लिए अथवा फोड़ा फुन्सियों पर लगाने के लिए कॉस्टिक लोशन (Caustic Lotion) ख़रीदा होगा। दूकानदार उसको नीली शीशी में अथवा सादी शीशी को मोटे नीले काग़ज़ में लपेट कर देता है। वह घोल भी चाँदी से बनता है और रासायनिक भाषा में उसे सिलवर नाइट्रेट घोल (Silver Nitrate Solution) कहते हैं। यदि वह घोल कुछ गहरा हो तो उसमें डुबाई हुई रुई की फुरेरी प्रकाश में बाहर निकालने से काली पड़ जाती है। इस घोल में सूर्य के प्रकाश से काले हो जाने की शक्ति है।

सर हम्फ़री डेवी और उसके साथी टॉमस वेजवुड ने (जो कि एक कुम्हार के लड़के थे) अपने प्रयोगों से बतलाया कि धूप में सिलवर नाइट्रेट के घोल में भीगे हुए काग़ज़ पर

पत्ते या कोई और वस्तु रखने से उसका अङ्क बन जाता है, किन्तु वे लोग उस अङ्क को स्थायी नहीं बना सके। ऊपर की चीज़ उठा लेने से सारा कागज़ काला पड़ जाता और उसीके साथ चित्र भी विलीन हो जाता।

फ़ोटोग्राफ़ी की उन्नति के पथ में दूसरा क़दम फ़्रान्स निवासी नीप्स (Niepse) और डागेर (Dagaere) ने रक्खा। डागेर ने प्लेट पर आये हुए चित्रों की स्पष्टता देने की विधि निकाली। यह विधि एक आकस्मिक घटना द्वारा उसके हाथ लगी थी। पहले चित्र बड़े धुँधले बनते थे। एक बार उसने एक रात को बिना व्यक्त की हुई प्लेट (Undeveloped Plate) को अपनी अलमारी में रख दिया। प्रातः उठकर जो उसने देखा तो उसमें तसवीर को व्यक्त पाया। उसके हर्ष का पारावार न रहा। बहुत दिन के अनुसन्धान के पश्चात् उसे पता लगा कि उस अलमारी में रक्खे हुए पारे की करामात थी कि तसवीर व्यक्त हो गई।

सन् १८५१ में पेरिस निवासी ली ग्रे (Le Grey) और लन्दन निवासी स्कॉट आरचर ने शीशे पर नेगेटिव बनाने की रीति निकाली। इस पद्धति से यह उन्नति तो हुई कि एक चित्र से बहुत से चित्र बनाये जाने लगे किन्तु इनमें यह ख़राबी थी कि ये प्लेट ताज़े बनाए हुए सूखने से पूर्व ही प्रयोग में लाये जा सकते थे। इसी प्रकार की तर प्लेट (Wet Plate) ब्लाक बनाने के काम में अब भी आती हैं। सन् १८७१ में मैडस ने सरेस (Gelatine) के माध्यम में प्रकाश से प्रभावित होने वाला मसाला मिलाकर काँच की सूखी प्लेटें बनाईं। सन् १८५५ में झिल्ली (Film) पर प्रकाश से प्रभावित होने वाला मसाला लगाया जाने लगा। इससे और भी सुभीता हो गया।

फ़ोटो कैमरा द्वारा खींचा जाता है। कैमरे अनेकों प्रकार के होते हैं, उनमें दो मुख्य हैं, एक स्टैण्ड कैमरा जो कि तिपाई के ऊपर खड़ा किया जाता है और दूसरा हैण्ड कैमरा जिसको हाथ में लेकर तसवीर खींची जाती है। दोनों एक ही सिद्धान्त पर काम करते हैं।

हैण्ड कैमरा
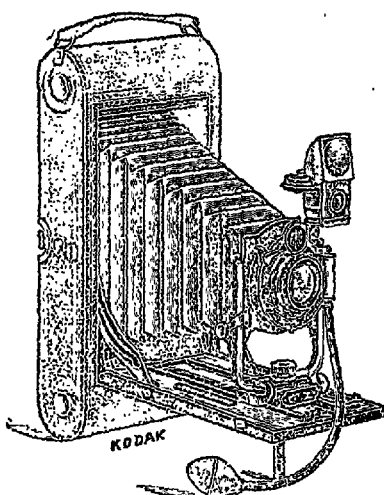
हैण्ड कैमरा में इतनी कठिनाई नहीं पड़ती। फ़िल्म की रीलें कागज़ में लिपटी हुई आती हैं। उन्हें नीचे के बेलन में अटका कर उसका दूसरा सिरा ऊपर के बेलन में लगा दिया जाता है। कैमरे के भीतर ही वेलन घुमाने से फ़िल्म का मसाले वाला भाग वन्द किए हुए छेद के सामने आ जाता है। कैमरे का छेद थोड़ी देर के लिए खोल दिया जाता है और प्लेट या फ़िल्म पर प्रकाश पड़ जाता है। प्रकाकदर्शक (रवर का वल्व

होता है) को निर्दिष्ट समय तक दवा कर छोड़ देने से प्रकाश-दर्शन हो जाता है। इसको एक्सपोजर (Exposure) अर्थात् प्रकाश-दर्शन कहते हैं। सफ़ेद चीज़ों से प्रकाश प्रतिफलित हो जाता है और काली चीज़ों से नहीं होता। प्लेट का मसाला प्रकाश से प्रभावित हो जाता है। प्लेट को स्लाइड समेत अँधेरे कमरे में ले जाते हैं, और उसे लाल प्रकाश में खोलते हैं। वहाँ प्लेट को व्यक्त करने वाले घोल (Developing Solution) में डाल कर चित्र को व्यक्त कर लेते हैं। डेवलप करने के घोल बाज़ार में विकते हैं और घर में भी बनाए जा सकते हैं। उसके पश्चात् उसे हाइपो (Hypo) के घोल में डाल कर पका कर लेते हैं। फिर उस पर प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह क्रिया बड़ी सावधानी से करनी होती है। प्लेट को अनेकों बार स्नान कराना पड़ता है। इस प्रकार तैयार की हुई प्लेट को नेगेटिव (Negative) अर्थात् उलटी कहते हैं। फिल्मों को भी

नेगेटिव
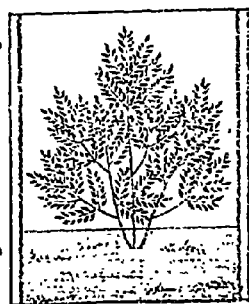
पोज़िटिव

इसी प्रकार डेवलप करना पड़ता है। जो वस्तु वास्तव में काली होती है सफेद दिखलाई पड़ती है और जो सफेद होती है वह काली दिखलाई पड़ती है।

प्लेट को डेवलप करने के पश्चात् उसे छापने वाले कागज़ के साथ फ्रेम में कस कर धूप में रख देते हैं। प्लेट का मसाले वाला रुख़ नीचे रहता है और शीशे वाला रुख़ ऊपर रहता है छापने के कागज़ का मसाले वाला रुख़ और प्लेट का मसालेवाला रुख़ एक दूसरे के आमने सामने रहते हैं। छापने के काग़ज़ पर नेगेटिव में होकर प्रकाश पड़ता है। नेगेटिव के जो काले भाग हैं उनमें होकर प्रकाश नहीं जा सकता और जो सफेद भाग हैं उनमें प्रकाश प्रवेश करके छापने वाले काग़ज़ पर प्रभाव डाल देता है। फल यह होता है कि वस्तु का ठीक रंग रूप काग़ज़ पर आ जाता है।

जब तक ख़ास तौर पर रंगीन फ़ोटो न ली जाय तब तक काले और सफेद दो ही रंग आते हैं (काले का अर्थ है प्रकाश के अभाव का रंग) किन्तु धूप में छपा हुआ यह चित्र प्रकाश में ठहर नहीं सकता, इसको स्थायी करने के लिए टोनिंग सौल्यूशनमें डालना पड़ता है और उसके पश्चात् वह हाईपो में धोया जाता है। बाज़ार में स्वयं टोन होने वाले काग़ज़ भी मिलते हैं जिनको छापकर केवल हाइपो में डाल देना पड़ता है। छापने के काग़ज़ कई प्रकार के होते हैं, कुछ काग़ज़ ऐसे भी होते हैं जो गैस की रोशनी में छापे जाते हैं।

आजकल रंगीन फ़ोटोग्राफ़ी भी होने लगी है उसके द्वारा रंगीन वस्तुओं का फ़ोटोग्राफ़ स्वाभाविक रंग में लिया जाता है। फ़ोटोग्राफ़ी आजकल कला का रूप धारण करती जा रही है। कलाकार की भाँति फ़ोटोग्राफ़र भी एक वस्तु को अच्छे से अच्छे रूप में दिखला सकता है। फ़ोटोग्राफ़ी नक़ल अवश्य है किन्तु वह ऐसी नक़ल नहीं जिसमें अक़ल की आवश्यकता न हो।

किताबों और अख़बारों में छापने के लिए इन तसवीरों के ब्लॉक (Block) अर्थात् ठप्पे बना लिये जाते

हैं। आजकल ब्लॉक हाथ से नहीं खोदने पड़ते। ये ब्लॉक ताँबे आदि धातुओं पर बनते हैं। ये भी दो प्रकार के होते हैं एक लाइन ब्लाक दूसरे हाफ़टोन। लाइन ब्लाक में केवल रेखाएँ ही बनती हैं। हाफ़टोन में बिन्दियों द्वारा हलके गहरे और हर तरह के शेड (Shade) आ सकते हैं। हाफ़टोन ब्लॉक में छोटी छोटी बूँदें उठी रहती हैं, तिरंगे चित्र भी हाफ़टोन ब्लॉकों द्वारा छापे जाते हैं किन्तु इनके छापने में चित्रों को तीन बार छापना पड़ता है।

हाफ़टोन ब्लॉक का नमूना

लाइन ब्लॉक का नमूना

आजकल फ़ोटोग्राफ़ी में बड़ी उन्नति हो गई है और जीवन के अनेकों कार्यों में इसका प्रयोग होता है। फ़ोटोग्राफ़ी वस्तुओं को सापेक्षित अमरता प्रदान कर देती है। समय बीतने पर

मानसिक चित्र धुँधले पड़ जाते हैं। फ़ोटोग्राफी द्वारा हम अपने पूर्वकाल के सुखद वा दुखद अनुभवों की स्मृति को चिरस्थायी बना सकते हैं। नाई पुरोहितों के भ्रमात्मक वर्णनों की अपेक्षा वर-कन्या के फ़ोटो चित्र विवाह सम्बन्ध कराने में बहुत कुछ सहायक होते हैं।

शाब्दिक वर्णन चाहे जितना सुन्दर हो, कभी पूरा नहीं होता, किसी मनुष्य की शाब्दिक हुलिया सोलह आने ठीक नहीं होती। इसलिए मनुष्य का चित्र दिखला कर पुलिस को उसकी खोज में बहुत कुछ सहायता दी जा सकती है। चिकित्सा में एक्स रश्मियों द्वारा लिये हुए चित्र परम उपयोगी सिद्ध हुए हैं। किसी दस्तावेज़, रहननामा या बयनामा लिखे जाने के समय कौन कौन लोग मौजूद थे, इसका सब से अच्छा प्रमाण फ़ोटोग्राफ़ के द्वारा ही दिया जा सकता है। किसी दुर्घटना के हो जाने पर फ़ोटोग्राफ़ परिस्थित को समझाने में बहुत कुछ काम आते हैं। अभियुक्तों के अँगूठे आदि के सूक्ष्म चिन्हों का फ़ोटोग्राफ़ लेकर उनको एनलार्ज (Enlarge) कर अर्थात् बढ़ाकर उनकी परीक्षा की जा सकती है। पुरातत्व विभाग के शिला लेखों का फ़ोटोग्राफ़ लेकर घर पर बैठे बैठे सुभीते के साथ उनका अर्थ लगाया जा सकता है। लोग तो अब भूतों का भी फ़ोटोग्राफ़ लेने लग गये हैं किन्तु इसमें जाल साज़ी की मात्रा अधिक मालूम होती है। वैज्ञानिक लोग आकाश-पिण्डों, हिमाच्छादित दुरूह उत्तुङ्ग पर्वत श्रृङ्गों तथा प्रस्तरीभूत अस्थि-पिंजरों का फ़ोटोग्राफ़ लेकर जनता के ज्ञान की वृद्धि करते हैं। यात्रियों के लिये फ़ोटोग्राफी एक ईश्वर प्रदत्त-वस्तु का सा महत्व रखती है। वे लोग अपने अनुभव को सार्वजनिक बना सकते हैं। प्रायः यात्री लोग झूठे समझे जाते हैं किन्तु कैमरा का साक्षित्व उनके वचन को सहज ही में प्रमाणित कर देता है।

फ़ोटोग्राफ़ी बड़ा उपयोगी और निरापद व्यसन है। जो लोग थोड़ा धन व्यय कर सकते हैं उनको यह अवश्य सीखना चाहिए। अखबारों में महत्वपूर्ण घटनाओं और यात्राओं के चित्र भेज कर लोग अपने व्यसन को लाभ दायक भी बना सकते हैं।

कैमरा कोठरी को कहते हैं। यदि किसी कमरे में बाहर की ओर एक छोटा छेद हो तो छेद में होकर बाहर चलने वाले लोगों की उलटी छाया दीवाल पर पड़ने लगती है। कार्डबोर्ड के एक छोटे से बक्स में एक ओर सुई का छेद करके और दूसरी ओर मोमिया कागज़ का पर्दा लगाकर इस बात को प्रयोगात्मक रूप से देखा जा सकता है। बक्स के पीछे लगे हुए मोमिया कागज़ के पर्दे पर छेद के सामने रक्खी हुई मोमबत्ती का उलटा चित्र बनेगा (चित्र देखिये)।
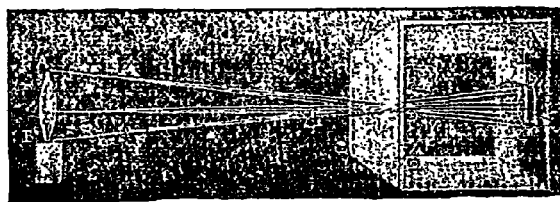
सुई के छेद वाला कैमरा

कैमरा भी इसी प्रकार की छोटी अँधेरी कोठरी है। इसमें प्रकाश आने के लिए एक छेद होता है, जिसमें कि एक ताल (Lens) लगा रहता है और जिसका घेरा आवश्यकतानुसार कम या अधिक प्रकाश देने के लिए घटाया बढ़ाया जा सकता है। मामूली स्टेण्ड कैमरों के पीछे के भाग में एक अन्धा शीशा (Glound Glass) रहता है, उस पर बाहरी चीज़ों का

उलटा चित्र पड़ता है। सर के ऊपर एक काला कपड़ा डालकर अन्धे शीशे पर देख लिया जाता है कि कितना बड़ा चित्र आता है और चित्र साफ़ है या नहीं। यदि चित्र साफ़ न आता हो तो कैमरे को आगे पीछे करके अथवा कैमरे की धोकनी को आगे पीछे सरका कर चित्र को ठीक स्थान पर फ़ोकस (Focus) अर्थात् केन्द्रस्थ कर लिया जाता है।

फ़ोकस कर लेने के पश्चात् छेद बन्द करके कैमरा के पीछे के भाग में डार्क स्लाइड (Dark Slide) अर्थात् प्लेट घर को प्रविष्ट कर देते हैं। उसका बाहरी ढक्कन खींच लिया जाता है और उससे प्लेट के मसाले का भाग लेन्स के सामने आ जाता है। प्लेट को बड़ी सावधानी के साथ प्रकाश से सुरक्षित रखना पड़ता है। अँधेरे कमरे में ही प्लेट डार्क स्लाइड अर्थात् प्लेटघर के भीतर भरी जाती है और भरी हुई डार्क स्लाइड को हमेशा काले कपड़े में लिपटा रखना पड़ता है।

अध्याय ११

सिनेमा और टॉकीज़

प्राचीन भारत में एक प्रकार के छाया-चित्र पट पर दिखलाए जाते थे। कठपुतलियों वाले अपनी पुतलियों को पर्दे के भीतर नचाते थे और उनकी छाया पर्दे पर पड़ कर दर्शकों के सामने चलते हुए चित्र उपस्थित कर देती थी। इनको छाया नाटक कहते थे। बहुत से पाश्चात्य विद्वानों* का मत है कि भारतीय नाटकों का उदय इन्हीं छाया नाटकों से हुआ है। एक प्रकार से ये सिनेमा के पूर्व रूप थे।

वैज्ञानिक लोग स्थिर चित्रों को तो जादू की लालटेन (Magic Lantern) द्वारा चित्र-पट के ऊपर फ़ोटोग्राफ़ी के आविष्कार के कुछ काल पश्चात् ही दिखलाने लगे थे किन्तु चल चित्रों का दिखलाना अभी हाल का ही आविष्कार है।

पहले पहल लोगों ने आँखों को धोखा देने वाले सैरबीन के से खिलौने बनाये थे, उनमें ऐसा प्रबन्ध किया जाता था कि मनुष्यों और जानवरों के कूदने फाँदने के कई चित्र जल्दी जल्दी घुमाने से चलते हुए चित्र दिखलाई पड़ते थे। लन्दन के ग्रीन नामक एक फ़ोटोग्राफ़र को मेजिक लालटेन में तसवीरों को जल्दी से हटाने में कुछ गति का सा आभास दिखलाई दिया। उसने सन् १८८५ में लन्दन की फ़ोटोग्राफ़िक सोसायटी के सामने शीशे पर बनी हुई कई तसवीरों को रोशनी में घुमा कर

---

* उनमें से पिशेल (Pischel) मुख्य हैं। देखिए कीथ (Keith) साहब का लिखा हुआ (The Sanskrit Drama) पृष्ठ ४३-४७

चलती हुई तसवीरें दिखलाईं। इसके पश्चात् उसने शीशे के स्थान में सेल्यूलोइड का प्रयोग करना आरम्भ किया। सन् १८६३ में एडीसन ने भी शिकागो में एक सैरबीन बना कर दिखलाई। दो वर्ष बाद लन्दन निवासी पोल ने लगभग आधुनिक सिनेमा के से चल चित्र दिखलाने में सफलता प्राप्त की। उसके पश्चात् बहुत सी उन्नतियाँ हुईं।

स्थिर चित्रों को चल बना देना ही बड़ा काम था, किन्तु टॉकी ने तो चित्रों को पूर्ण सजीवता प्रदान कर दी। तसवीरों की जब अधिक प्रशंसा की जाती है तब कहा जाता है कि 'बस बोल डालने की कसर रह गई'। टॉकी ने उसमें बोल डालने की कसर को भी पूरा कर दिया है।

क्या आप जानते हैं कि सिनेमा में चल चित्र किस प्रकार दिखलाई पड़ते हैं? स्थिति-परिवर्तन को ही गति कहते हैं। जब तक एक चीज़ एक ही स्थान पर रहती है तब उसे स्थिर कहते हैं। जब हम हाथ को ऊपर से नीचे ले जाते हैं या नीचे से ऊपर लाते हैं तब वह भिन्न भिन्न स्थानों में होकर गुज़रता है और उसे हम चलता हुआ कहते हैं, यदि उतने भिन्न स्थानों के फ़ोटो ले लिये जायँ और वे जल्दी से चलाये जायँ तो वह फ़ोटो चलते हुए दिखलाई पड़ेंगे। अब प्रश्न यह होता है कि इतने भिन्न भिन्न चित्र एक कैसे हो जाते हैं?

लड़के प्रायः जलती हुई लकड़ी घुमाया करते हैं और वह लकड़ी आग के चक्कर के रूप में दिखलाई पड़ती है। वास्तव में जलती हुई लकड़ी किसी एक क्षण में एक ही स्थान पर होगी, सब स्थानों में नहीं हो सकती किन्तु दिखलाई पूरे चक्कर में पड़ती है, इसका क्या कारण है? हमारी आँख पर जो चित्र बनते हैं वे वस्तु के हट जाने पर भी थोड़ी देर ($\frac{१}{१०}$ सैकिण्ड) तक बने रहते हैं। जब तक एक मिटने नहीं पाता तब तक दूसरा

आ जाता है। इसलिए सिलसिला टूटा हुआ नहीं दिखलाई पड़ता। सिनेमा के चित्र भी अलग अलग होते हुए एक धारा-वाहिक रूप में दिखलाई पड़ते हैं और हमें गति का भान होने लगता है।

सिनेमा की तसवीरें फ़िल्म पर ली जाती हैं। यह फिल्म सिनेमा के केमरा में इस प्रकार लगाई जाती है कि एक कमानी के बल से फ़िल्म थोड़ी थोड़ी देर रुक कर चलती है और इस तरह से एक मिनट में प्रायः बीस बार प्रकाश दर्शन (Exposure) होकर बीस स्थितियों की तसवीर आ जाती है। इन नेगेटिव फ़िल्मों से पोज़िटिव फ़िल्में तैयार की जाती है, और वे सिनेमा की मशीन पर जिसे प्रोजेक्टर कहते हैं चलाई जाती हैं। उनके चलने से चलती हुई तसवीरें दिखलाई देने लगती हैं। ये फ़िल्म प्रायः ३५ मिली मीटर (क़रीब १$\frac{3}{=}$ इंच) चौड़ी होती हैं, इनके छोरों पर छोटे छोटे छेद रहते हैं, इन छेदों के सहारे ही फिल्म घूमता है।

यह तो अवाक् (चुप) चल चित्रों की बात रही। अब सवाक् (टॉकी) चित्रों की बात सुनिए। जब सवाक् 'टॉकी' चले थे तब लोगों का ख़्याल था कि इनमें ग्रामोफ़ोन लगा रहता है। यह ग्रामोफ़ोन हमारे· साधारण ग्रामोफ़ोन का सा नहीं होता वरन् प्रकाश द्वारा फ़िल्म में ही अङ्कित शब्दों से काम करता है। एक प्रकार की शक्ति दूसरे प्रकार की शक्ति में परिवर्तित होती रहती है। टॉकी की फ़िल्म बनाते समय शब्द की तरङ्गें प्रकाश में परिवर्तित होकर प्रकाश के हलके अथवा तेज़ होने के अनुकूल फ़िल्म पर हलके या गहरे अङ्क बना देती हैं। टॉकी फ़िल्म बनाते समय गायक या वार्तालाप करने वाला एक शब्द विस्तारक यंत्र द्वारा बोलता है। टेलीफ़ोन की तरह शब्द की तरङ्गें विद्युत् शक्ति में परिवर्तित हो जाती हैं और तार द्वारा आई हुई शक्ति प्रकाश को एक विशेष यंत्र द्वारा नियंत्रित करने लगती है, जिससे

प्रारंभिक शब्द तरंगों के अनुकूल फ़िल्म पर हलका या गहरा प्रकाश पड़ता है। आरम्भ में तो शब्द और प्रकाश की अलग-अलग फ़िल्में तैयार होती हैं। उससे पश्चात् वे दोनों एक में मिला ली जाती हैं। बराबर वाले फ़िल्म के चित्र में छोटी छोटी आड़ी रेखाओं के जो चिह्न हैं वे शब्द के अङ्क हैं। सिनेमा दिखलाते समय फ़िल्म प्रोजेक्टर (Projector) पर चढ़ादी जाती है। शब्द के अङ्कों वाला भाग जब एक विशेष यंत्र (साउण्ड हेड) में होकर गुज़रता है तब फ़िल्म के माध्यम द्वारा निकली हुई हलकी या गहरी रोशनी फिर दुबारा विद्युत-धारा में परिवर्तित हो जाती है। उस धारा की भिन्न भिन्न गतियों से शब्द बन कर चित्र पट (पर्दे) के पीछे लगे हुए लाउड स्पीकरों द्वारा निकलने लगता है। फ़िल्म में ऐसा मिलान रक्खा जाता है कि जब जैसा मुँह खुले उसी के अनुकूल आवाज़ भी निकले। आगे पीछे नहीं निकलती और चित्र बिलकुल सजीव रूप से बोलते हुए मालूम देते हैं।
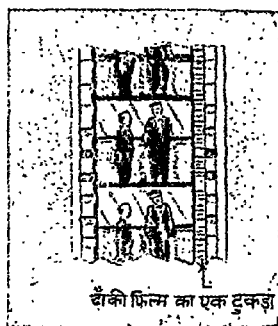
टॉकी फ़िल्म का एक टुकड़ा

यद्यपि आजकल सिनेमा और टॉकी अधिकतर आमोद प्रमोद के ही विषय बन रहे हैं तथापि उनके द्वारा जनता को बहुत कुछ शिक्षा दी जा सकती है। सिनेमा द्वारा बहुत सी चीज़ों की निर्माण-विधि दिखलाई जा सकती है और स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत से सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शन कराया जा सकता है। बालकों को सिनेमा द्वारा इतिहास का भी भली प्रकार ज्ञान कराया जा सकता है। आजकल सिनेमा ने रंग-मंची का स्थान क़रीब क़रीब ले लिया है। सिनेमा द्वारा रंग-मंच क

बहुत सी असुविधाएँ दूर हो गई हैं। अब जगह जगह भारी भारी सीन सीनरी के पर्दे और काठ कवाड़ ढोना नहीं पड़ता, एक फ़िल्म मँगा लेने से ही सब काम चल जाता है। सम्भव है

आर्क लेम्प (प्रकाश देने वाला)
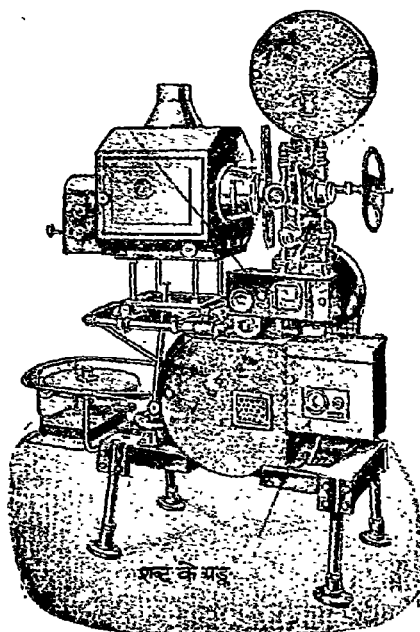
मेजिङ्ग बॉक्स (रील चढ़ाने के लिए)

लेन्स (ताल)

साउण्ड हेड

शब्द के भाड़

प्रोजेक्टर

कि भविष्य में ऐसा प्रबन्ध हो जाय कि रेडियो की भाँति प्रत्येक मनुष्य अपने घर के कमरे में ही संसार के रंग-मंच की बातें देख सके।

अध्याय ११

मुद्रण यंत्र

यद्यपि मुद्रण कला बड़ी प्राचीन है (मुद्राओं अर्थात् मुहरों और कपड़े आदि छापने और सिक्के ढालने के ठप्पों का ईसा मसीह के पूर्व की शताब्दियों से प्रचार है)। तथापि पुस्तकों के छापने में उस कला का प्रयोग प्रायः पाँच सौ वर्षों से हुआ है। कहा जाता है कि चीन में पुस्तकों के छापने की कला का प्रचार प्रायः एक हज़ार वर्ष से है।

जब तक मुद्रण कला का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। पुस्तकें लिखना एक अच्छा रोजगार समझा जाता था और कुछ लोग सुन्दर लिपि में पुस्तकों के लिखने का काम एक व्यसन और कला के रूप में भी करते थे। लिखित पुस्तकों का बहुत कुछ प्रचार होते हुए भी वे सर्वसाधारण के लिए सुलभ न थीं। इसलिए अधिकांश पढ़ाई मौखिक रूप से हुआ करती थी। आजकल भी काशी आदि प्राचीन नगरों में ग्रन्थ के ग्रन्थ ज़बानी ही पढ़ाये जाते हैं। पुस्तकों के सुलभ न होने के कारण ही कंठ की विद्या और गाँठ के द्रव्य का महत्व समझा जाता था।

जब कागज़ का प्रचार नहीं हुआ था तब लोग ताड़-पत्र और भोज-पत्र पर लिखा करते थे (आजकल भी यंत्र मंत्र भोज-पत्र पर लिखे जाते हैं) लम्बे ताड़ पत्रों पर अक्षर सुई से अंकित किये जाते थे। पत्रों के बीच में छेद कर उनमें डोरा डाल दिया जाता था और पत्रों को तितर-बितर हो जाने से सुरक्षित

रखने के लिए उस डोरे को लपेट कर ग्रन्थि लगा दी जाती थी। ग्रन्थि से ग्रन्थ (पुस्तक) शब्द बना है। प्राचीन लोगों ने इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी इतनी किताबें लिख डालीं यह बात उनके लिए बड़ी प्रशंसा योग्य है।

पुस्तक छापने की कला ईजाद करने का श्रेय अधिकतर गटनबर्ग (Gutenberg) नाम के एक जर्मन को दिया जाता है। इसका इतिहास बड़ा विचित्र है। एक रोज़ वह अपनी स्त्री के साथ ताश खेल रहा था (प्रतिभाशाली मनुष्यों के हाथ में बुराई भी भलाई हो जाती है) सहसा वह एक पत्ते की ओर बड़े ध्यान से देखने लगा। उसकी स्त्री ने उससे पूछा 'इसमें आप ऐसी क्या विचित्र बात देखते हैं जो इसके ऊपर इतनी देर से निगाह गड़ाये हुए हैं' पति देव ने उत्तर दिया कि मैं इस बात को देख रहा था कि इस पत्ते पर तसवीर किस प्रकार बनाई गई होगी। स्त्री ने कहा कि शायद उसी प्रकार रेखाएँ खींच कर और रंग भर कर जिस प्रकार कि और तसवीरें बनाई जाती हैं। 'नहीं' श्रीमतीजी के कथन का खण्डन करते हुए पति देव ने कहा 'इसके बनाने की और भी एक विधि है, वह यह कि लकड़ी के ठप्पे बना कर यह तसवीरें छापी जाती हैं।'

गटनबर्ग जवाहरात की सफ़ाई और नक़्क़ाशी का काम करता था, वह खोदने के काम में तो सिद्धहस्त था ही उसने अपनी दूकान से एक लकड़ी का टुकड़ा लेकर अपनी स्त्री का नाम खोदा। स्याही लगा कर छापा तो बड़े सुन्दर अक्षर बन गये। फिर उसने एक ईसाई सन्त (Saint) का चित्र अङ्कित करके काग़ज़ पर छापा। चित्र बड़ा सुन्दर उतरा। उसने चित्र की कई प्रतियाँ बनाईं और अपनी दूकान पर प्रदर्शनार्थ रक्खीं। लोग उसकी जवाहरात को न देख कर उन चित्रों को ही देखते थे। इससे उसके जवाहरात के

रोजगार में क्षति पहुँची किन्तु उसने तसवीर खोद कर उनके छापने का काम न छोड़ा। उसकी स्त्री ने भी उसे इस कार्य में बड़ा प्रोत्साहन दिया।

कुछ दिनों पश्चात् उसने एक महन्त (Monk) को अपनी तसवीरें दिखलाईं। वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सब तसवीरें खरीद लीं। इसके पश्चात् उन्होंने गटनवर्ग को एक छोटा सा धार्मिक इतिहास छापने को दिया। उन दिनों पूरा सफ़ा खोदना पड़ता था। जैसे तैसे चार आदमियों की सहायता से खुदाई पूरी हुई। गटनवर्ग की स्त्री ने छापने का कार्य हाथ में लिया। वह काग़ज़ को एक ही ओर छापती और दो पृष्ठों की पीठ मिला कर चिपका देती। इस तरह पूरी पुस्तक तैयार हुई। शुरू शुरू में उस पुस्तक की केवल दो ही प्रतियाँ बिकीं। ग़रीब आदमी तो पढ़ना ही न जानते थे अमीरों के यहाँ गटनवर्ग के आदमियों की पहुँच न थी, और पुजारी लोग अपनी पुस्तक स्वयं ही लिखना पसन्द करते थे। आजकल की भाँति उन दिनों भी स्कूली किताबों की ही अधिक खपत थी। गटनवर्ग ने उन दिनों पढ़ाई जाने वाली एक व्याकरण की छोटी पुस्तक को छापा। उसकी अच्छी बिक्री हुई क्योंकि वह लिखी हुई पुस्तक से सस्ती पड़ती थी।

उस अवस्था में भी मुद्रण का कार्य लिखने से कम कठिन न था। एक महीने में दो पृष्ठ खुद पाते थे। गटनवर्ग से बाइबिल के छापने के लिए कहा गया। उस हिसाब से उसे बाइबिल तैयार करने में साठ वर्ष लगते। उसकी स्त्री ने निश्वास भरते हुए कहा कि यदि बहुत से आदमियों की सहायता न मिले तो इस कार्य में जीवन ही समाप्त हो जायगा और पुस्तक का अन्त न होगा। आख़िर उसने कुछ आदमियों की सहायता से बाइबिल के एक भाग का खोदना आरम्भ किया। एक रोज़ थोड़ी

असावधानी के कारण लकड़ी का तख्ता कट गया। वह इस दुर्घटना के ऊपर विचार ही कर रहा था कि सहसा उसे एक नई बात सूझी, वह यह कि उस लकड़ी के बहुत से टुकड़े करके अलग अलग अक्षर क्यों न बना लिए जायँ। इस प्रकार टाइप बनाने का सूत्र पात हुआ और फिर लकड़ी के स्थान में धातु का प्रयोग होने लगा।

गटनवर्ग को अपने जीवन में बड़ी कठिनाइयाँ रहीं। लोग उससे मुफ्त में ही छापने का रहस्य जानना चाहते थे। एक बार तो उसे अपना छापाखाना तोड़ डालना पड़ा। जिस मनुष्य (फ़स्ट) ने उसे आर्थिक सहायता दी थी वह बड़ा हृदयहीन और दुष्ट निकला। जब गटनवर्ग की बाइबिल छप गई तो उसने रुपये का कड़ा तक़ाजा करना शुरू किया। गटनवर्ग की अनुनय विनय पर उसने कुछ ध्यान न दिया, नालिश करदी और उसके छापेख़ाने, टाइप और बाइबिल की प्रतियाँ ले लीं। गटनवर्ग का जीवन भर का परिश्रम उसके हाथ से चला गया, वह वर्बाद हो गया। फ़स्ट की दुष्टता इतने में ही सीमित न रही, उसने फ्रान्स में जाकर अपने नाम से छापे की कल का आविष्कार सुरक्षित करा लिया। फ़स्ट को अन्त में पश्चाताप हुआ और गटनवर्ग को अपने कार्य में फिर सम्मिलित करना चाहा किन्तु वह फिर शामिल नहीं हुआ। संसार ने भी गटनवर्ग की प्रतिभा को स्वीकार किया और उसे इस कला के आविष्कार का श्रेय मिला।

इंगलिस्तान में भी विलियम केक्सटन (William Caxton) नाम के एक व्यक्ति ने छापने की कला का प्रचार किया, उसका वहाँ बड़ा मान हुआ। सन् १४७७ में इंगलिस्तान में पहला छापाख़ाना स्थापित हुआ। कहा जाता है कि हिन्दुस्तान में सब से पहला छापाख़ाना श्रीरामपुर में ईसाई पादरियों ने संवत् १८६०

में स्थापित किया था। कुछ लोग पहला छापाखाना स्थापित करने का श्रेय बम्बई के एक सेठ को देते हैं।

अब छापने की कला में बहुत उन्नति हो गई है। छपाई का सब काम मशीन से होने लगा है। लाइनो और मोनो टाइप द्वारा टाइप ढल भी जाता है और कम्पोज़ भी हो जाता है। छापने की मशीनों में भी बहुत उन्नति हो गई है। अब उनमें बिजली की शक्ति का प्रयोग होने लगा है। आजकल लीडर, पायनियर, स्टेट्समैन आदि बड़े बड़े अखबार रोटेरी मशीन से छपते हैं। एक घण्टे में प्रायः ३०००० से ५०००० तक कापियाँ छप कर कट जाती और मुड़ कर डाक में भेजने योग्य हो जाती हैं। रोटेरी मशीन में काग़ज़ की बड़ी बड़ी रीलें लगती हैं, काग़ज़ मशीन में ही कट जाता है।
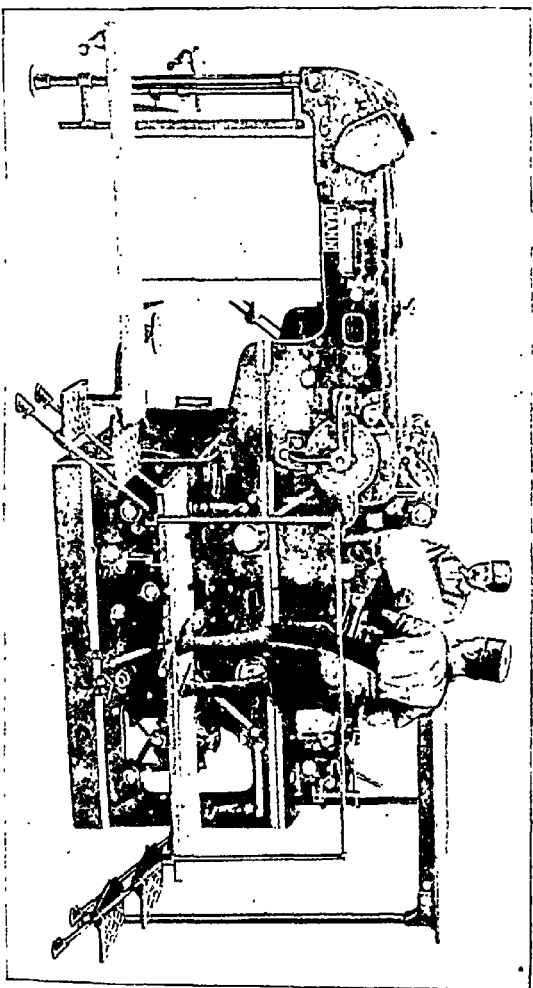
रोटेरी मशीन

अध्याय १३

लाइनो-टाइप

जिन लोगों ने किसी छापेखाने को देखा है वे जानते होंगे कि टाइप को 'कम्पोज़' करना कितना कठिन कार्य है। एक बड़े कबूतर खाने के से केस में एक एक अक्षर को अलग अलग चुनना और उसे 'स्टिक' में (अर्थात् वह प्लेट जिसमें कि टाइप रक्खे जाते हैं) जमाना हँसी खेल नहीं है। छप
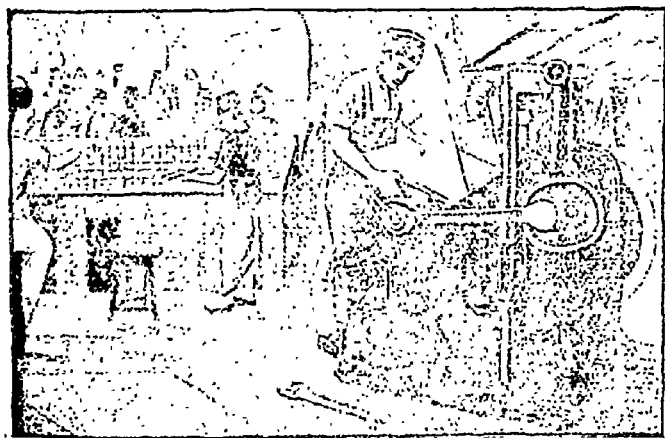
प्रेस और टाइप केसों के पास कम्पोज़ीटरों की भीड़

जाने पर फिर टाइप को 'दर्वे दर्वे' करते हुए यथास्थान पहुँचाना कम्पोज़ करने का एक तिहाई समय ले लेता है।

किताब छापने का काम तो जैसे तैसे चल जाता है किन्तु नारद मुनि की भाँति इधर से उधर नित्य नये संवाद पहुँचाने वाले दैनिक समाचार पत्रों के सोलह सोलह पेज रोज़ कम्पोज करना 'कारे दारद' की बात थी।

लाइनो-टाइप से ये सब कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। एक कार्यकर्ता मशीन पर बैठ जाता है, उसके सामने एक लम्बा चौड़ा टाइप रायटर का सा बोर्ड रहता है। जिस अक्षर को लाना हुआ उसकी कुञ्जी दबाई तुरन्त उसी अक्षर का साँचा अपने आप उतर आया, उसके पश्चात् दूसरे अक्षर का साँचा आया। (इन साँचों को अँगरेज़ी में मेट्रिक्स (Matrix) कहते हैं) इस प्रकार जब एक पंक्ति पूरी हो गई तब वह गले हुए शीशे की पंक्ति पर जमाई जाती है और तुरन्त ही सुन्दर रूप से कम्पोज़ की हुई चमकती दमकती श्वेत पंक्ति आ जाती है। ये पंक्तियाँ एक 'ट्रे' में पहुँचतीं जाती हैं और जब वे एक 'कॉलम' भर की हो जाती हैं तब वे कसकर छापने की मशीन पर पहुँचाई जाती हैं। मशीन ही टाइप के साँचों को यथास्थान पहुँचा देती है और शीशे की पंक्ति दुबारा गलने भेज दी जाती है। इस प्रकार हर समय नये टाइप का प्रयोग होता है, अक्षर खूब चमकते आते हैं, समय की बचत होती है और कम्पोज़ीटरों को भी विशेष कष्ट नहीं होता।

इस अद्भुत मशीन का आविष्कारक जर्मनी निवासी ऑटॉमर मैंगफ़ेलर था, जो कि पीछे से जर्मनी की अनिवार्य सैनिक नौकरी से बचने के लिए अमरीका चला गया था। इसका जन्म सन् १८५४ में हुआ था। उसके पिता अध्यापक का कार्य करते थे और इसने उन्हीं के स्कूल में शिक्षा पाई, किन्तु इसे अपने पैतृक धन्धे से रुचि न थी। आख़िर उसको घड़ीसाज़ की दूकान पर काम सीखने को बिठला दिया गया। वहाँ

पर उस कार्य में ऑटॉमर ने विशेष हस्तलाघव और कौशल का परिचय दिया। उसके मालिक ने खुश होकर पिछली साल के वेतन स्वरूप छः पौण्ड के क़रीब धन दिया (जर्मनी में काम सीखने वालों को अवैतनिक रूप से काम करना पड़ता है) वह छः पौण्ड की सम्पत्ति लेकर अमरीका चला गया। वाशिंगटन में उसे सरकारी नौकरी मिल गई। वहाँ पर उसे नये नये आविष्कारों के अध्ययन का अवसर मिला। वह टाइप-राइटर के से 'की-बोर्ड' द्वारा संचालित टाइप ढालने वाली मशीन बनाने की धुन में पड़ गया। एक रोज़ रेल में यात्रा करते हुए ऑटॉमर को सहसा यह ध्यान आया कि ऐसा क्यों न किया जाय कि एक ही मशीन में गला हुआ शीशा रहे और उसी में टाइप के साँचे टाइप-राइटर के से की-बोर्ड से संचालित किये जाकर ढाले हुए शीशे की पंक्ति में अङ्कित किये जायँ। विचार तो सहल था किन्तु उसको क्रियात्मक बनाना कठिन था। बीस वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् उसको अपने विचारों के चरितार्थ करने में सफलता हुई। सन् १८८४ में उसने अपने कतिपय मित्रों के सन्मुख अपनी नई मशीन का प्रदर्शन किया, लोगों ने उसे शीघ्रता से अपनाया।

पीछे से इसी प्रकार की एक और मशीन बनी जिसको मोनोटाइप (Mono type) कहते हैं। मोनोटाइप में पूरी पंक्ति न बना कर एक एक अक्षर का ढाँचा शीशे पर अङ्कित होता है और एक एक अक्षर अलग बनाता है। 'मोनो' (Mono) शब्द का अर्थ एक है। मोनो-टाइप पुस्तकों के छापने में विशेष उपयोगी होता है, क्योंकि इसमें अशुद्धियों का संशोधन भली प्रकार हो जाता है।

भारत के सौभाग्य से देशी भाषाओं की वर्णमाला के भी लाइनो-टाइप बन गये हैं। इसके आविष्कारक एक भारतीय

सज्जन हैं, उनका नाम है श्री हरिगोविन्द गोभिल। विलायत वाले तो देवनागरी वर्णमाला के लाइनो टाइप बनाने की आशा

श्री हरगोविन्द गोभिल

(हिन्दी लाइनो टाइप के आविष्कर्ता)

छोड़ चुके थे। अब देवनागरी के लाइनो टाइप के अलावा भारतवर्ष की अन्य प्रचलित वर्णमालाओं के भी लाइनो टाइप

बन गये हैं। इस आविष्कार की कथा श्री गोभिल जी के मुख से सुनिए। यह लेख विशाल भारत में छपा था।

देवनागरी लाइनो टाइप

"इन पंक्तियों का लेखक पिछले पन्द्रह वर्षों से देवनागरी लिपि का अध्ययन कर रहा है। सौभाग्य की बात है कि अमेरिका जैसे देश में जहाँ कला और विज्ञान उन्नति के शिखिर पर हैं, मुझे इसका टेकनिकल ज्ञान प्राप्त करने की सुविधाएँ मिलीं। सन् १६२८ में न्यूयार्क से 'ओरियण्ट' (Orient) नामक एक पत्र निकला और इसी सिलसिले में मुझे मुद्रण कला के आधुनिक आविष्कारों का कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान भी प्राप्त हुआ। उसी समय से मैं इस प्रश्न को हल करने के प्रयत्न में हूँ कि रोमन लिपि के मुद्रण की सी सुविधाएँ क्या हमारी मातृ-लिपि देव नागरी को प्राप्त नहीं हो सकती?

सन् १६३१ में दूसरी राउण्ड टेविल कानफ्रेंस के समय, अमरीका की एक प्रभावशाली संस्था की तरफ से, मैं महात्मा गांधी को निमंत्रण देने के लिए लन्दन गया था। मैं अमरीका वापिस जाने के लिये तैयार था कि सिर्फ एक दिन पूर्व लन्दन की लाइनो टाइप कम्पनी के मैनेजर से मिलने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा—देव नागरी लाइनो टाइप के लिये हिन्दुस्तान से कई बार माँग आई है। हम लोगों ने बनाने का प्रयत्न किया, विद्वानों और नीतिज्ञों से राय ली परन्तु सफलता नहीं मिली। अब हम लोग इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि देव नागरी का लाइनो टाइप बनना असंभव है।

मैंने उन बातों को ध्यान पूर्वक सुन कर उत्तर दिया—'यदि आप मुझे अवसर दें तो जिसे आप लोग असम्भव मान बैठे हैं; उसे मैं सम्भव करके दिखा दूँ।'

उस सहृदय मैनेजर ने मुझे सहयोग देना तो स्वीकार कर लिया; किन्तु मैं अमेरिका वापिस जाने के लिये बिलकुल तैयार था। अतएव उसने अमेरिका की लाइनो टाइप कम्पनी के प्रेसिडेण्ट के नाम एक पत्र लिख दिया।

मैं अमेरिका की लाइनो टाइप कम्पनी के प्रेसिडेण्ट मि० नार्मन डाज और उनके सहायक मि० सी० एच० ग्रिफ़िथ का जो मुद्रण कला के अनुभवी इंजीनियर हैं, कृतज्ञ हूँ; क्योंकि उनके सहयोग से मैं इस कार्य में हाथ लगा सका। किन्तु केवल हाथ लगा देने से ही काम पूरा हो जाने वाला नहीं था। मेरे मार्ग में और भी कठिनाइयाँ थीं। एक तरफ़ तो कम्पनी की शर्त थी कि देवनागरी-लिपि की प्रचलित प्रणाली ही काम में लाई जाय और कहीं भी कोई ऐसा परिवर्तन न किया जाय जिससे पुरानी पद्धति के पाठकों को पढ़ने में कष्ट हो। दूसरी तरफ़ मशीन की शर्त यह थी कि वह अपने 'की-बोर्ड' के ६० बटनों में अधिक से अधिक १२१ अक्षरों को स्थान दे सकती थी। बहुत ही कम काम में आने वाले अधिक से अधिक ५०-७५ अक्षरों को बाहर रखकर आवश्यकता होने पर हाथ से साँचे (मैट्रिस) की लाइनों में डाल देने की मैं व्यवस्था कर सकता था; किन्तु किसी भी हालत में मैं दो सौ से अधिक अक्षर नहीं लगा सकता था। इसके साथ ही मैं मशीन में 'करन' और 'डिगरी' के टाइप भी नहीं लगा सकता था। दूसरे शब्दों में देवनागरी का जो काम अब तक ७०० अक्षरों में होता था, उसे मुझे दो सौ अक्षरों में बिना करन और डिगरी के पूरा करना था। पाठकों को यह सुनकर हर्ष होगा कि कम्पनी और मशीन दोनों की शर्तों को पूरा करके मैंने सन् १६३२ में देवनागरी का लाइनो टाइप तैयार कर दिया।

अगस्त १६३३ में देवनागरी लाइनो टाइप की मशीन लेकर

मैं लन्दन होता हुआ कलकत्ते पहुँचा और यहाँ उसके दिखाने और सिखाने का कार्य आरम्भ किया। कई पत्रों में विशेष कर विशाल भारत में देवनागरी लाइनो टाइप में छपे हुए लेख निकले -और देश के सभी अँगरेजी और देशी भाषा के मुख्य मुख्य पत्रों में इसकी चर्चा हुई। सन् १९३३-३४ में उत्तरी भारत के सभी मुख्य मुख्य शहरों मे जाकर मुद्रण कला के विशारदों से मैं मिला और उनकी सम्मतियाँ लीं। कहना न होगा कि सभी मुद्रकों और प्रकाशकों ने देवनागरी लाइनो टाइप को पसन्द किया और इसके आविष्कार पर प्रसन्नता प्रकट की। वँगला, गुजराती इत्यादि के प्रकाशकों ने भी अपनी लिपि के लिये लाइनो टाइप वनाने का आग्रह किया। सन्तोष की वात है कि देवनागरी के लिये ही नहीं वल्कि वँगला, गुजराती और तामिल के लिये भी अव लाइनो टाइप तैयार हो गया है। देवनागरी लाइनो टाइप से देवनागरी के मुद्रण में एक नया अध्याय खुला है और आशा है कि यह अवश्य ही युगान्तर करेगा। इस लाइनो टाइप में कुछ दोषों का रह जाना सम्भव है; किन्तु ये दोष तो अभ्यास और अनुभव द्वारा ही दूर होंगे जैसा कि सभी मशीनों के सम्वन्ध में होता है।"

अध्याय २४

टाइप-राइटर

आजकल छापाखाने की मशीनों में अख़बारों की तह होकर लेबिल भी चिपक जाते हैं, और यदि प्रत्येक प्रतिलिपि पर नया नम्बर देना चाहें तो नम्बर भी दे सकते हैं, किन्तु सन् १८६० के क़रीब ऐसी बात न थी। उस ज़माने में आजकल की सी नम्बर डालने की मशीनें भी न थीं। हिसाब किताब में, खातों और नोटबुकों में नम्बर हाथ से ही डालने पड़ते थे या अलग अलग संख्या की मुहर से काम चलाया जाता था। सन् १८६६ में क्रिस्टोफर शोल्स (Christopher Sholes) और सेम्युएल सोल (Samuel Sole) ने नम्बर डालने की मशीन बनाई और उसका अधिकार सुरक्षित कराया।

जब उपर्युक्त दोनों मित्रों ने अपनी बनाई हुई मशीन अपने अन्य मित्रों को दिखलाई तब उन्होंने कहा कि ऐसी मशीन क्यों नहीं बनाते जो कि केवल अंक ही न छापे बरन् वर्णमाला के अक्षर भी छाप सके। यह बात क्रिस्टोफर शोल्स के हृदय में अङ्कित हो गई और उसने अपनी सारी शक्ति ऐसी मशीन के आविष्कार में लगादी। उसको ऐसी मशीन बनाने के लिए मुद्रण-कला का पर्याप्त ज्ञान था क्योंकि मुद्रण ही इसका धन्धा था और यह अख़बार भी निकालता था। इस ज्ञान के अतिरिक्त उसको ऐसी मशीन की आवश्यकता भी थी क्योंकि एक बार उसके छापेख़ाने में लोगों ने हड़ताल करदी थी और उसी

समय उसका संकल्प हो गया था कि ऐसी मशीन वनाई जाय जिससे मुद्रकों के अधीन न रहना पड़े।

आवश्यकता के साथ ही उसके पूरे करने के लिए पर्याप्त ज्ञान और अध्यवसाय था ही, इन वातों के अतिरिक्त यह पढ़कर कि लन्दन में ऐसी मशीन का प्रदर्शन कराया गया है, शोल्स के विचारों को और भी उत्तेजना मिल गई। अखवारों में उस मशीन की सम्भावनाएँ तो वहुत वतलाई गई थीं, किन्तु उसके वर्णन से उसको यह प्रतीत हुआ कि वह मशीन वहुत भारी और पेचीदा होगी और वह जल्दी से ख़राव भी हो जाया करेगी। दोनों मित्रों ने उससे सुलभ और सीधी मशीन वनाने की तैयारी की। इस कार्य में शोल्स और सोल के अतिरिक्त एक और मित्र शामिल हो गया। यह त्रिमूर्ति इस कार्य में जुट गये। सोल की दूकान के एक भाग में यह कार्य होने लगा। यह लोग ख़ूव संलग्नता से कार्य करते और जव थक जाते तव शतरंज से अपना मनोविनोद कर लेते थे। पहले टाइप राइटर का अधिकार सन् १८६८ में सुरक्षित कराया गया। इसमें सव अक्षर वड़े (Capital) अक्षर ही थे, और एक कुंजी को दवाने के वाद काग़ज़ वाले वेलन को हाथ से हटाना पड़ता था। छापते समय इस प्रारम्भिक मोडिल (Model) वा नमूने में छपे हुए अक्षर भी नहीं दिखलाई पड़ते थे।

जव इन मित्रों को वड़े अक्षर छापने में सफलता हो गई तव उन्होंने उस मशीन पर छाप छाप कर भिन्न भिन्न मित्रों को पत्र भेजना शुरू किया। छपे हुए पत्र ही नई मशीन के सव से अधिक प्रभावशाली विज्ञापन वन गये। हाथ कङ्कण को आरसी क्या? मशीन की सफलता से प्रभावित हो डेन्समोर (Densmore) नाम के व्यक्ति ने इसके निर्माण में भाग लेना चाहा और मशीन-निर्माण के सारे प्रारम्भिक व्यय

को देने के लिए तैयार हो गया। इस नये साझीदार ने मशीन को भिन्न भिन्न लोगों से जाँच कराई और जो त्रुटियाँ बतलाई गईं उनके दूर करने में इन मित्रों को प्रायः तीस चालीस नमूने तैयार करने पड़े, यहाँ तक कि शोल्स ने एक दिन तंग आकर कहा नमूने बनाते बनाते मेरी तो नाक में दम आ गया। इसलिए सब त्रुटियाँ एक बार देखली जायँ और फिर अन्तिम नमूना बनाया जाय। फिर ऐसा ही निश्चय किया गया।

अन्ततो गत्वा यह नमूना तैयार हुआ और इसके अनुकूल मशीनें तैयार करने का अधिकार न्यूयार्क की रेमिंगटन कम्पनी
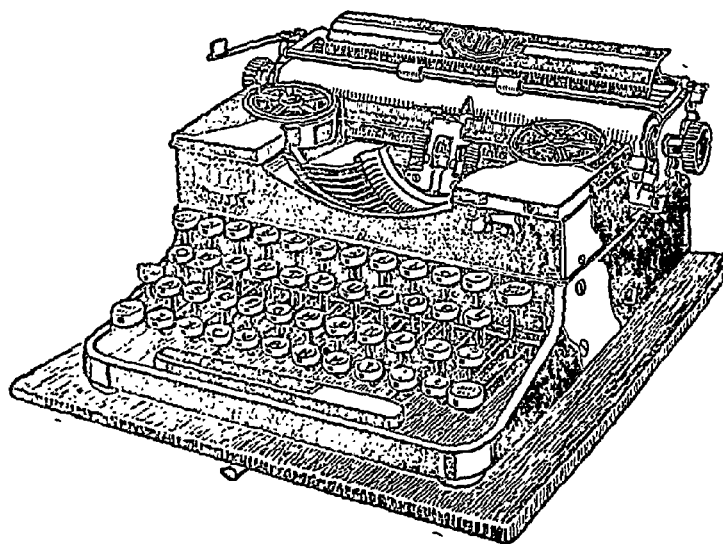
टाइप राइटर

को दिया गया। इस कम्पनी के लोग कपड़ा सीने की मशीन बनाते थे। इन लोगों के पास पेचीदा मशीनें बनाने के सब

साधन थे। शोल्स ने तो अपना अधिकार बारह हज़ार डॉलर में बेच दिया, किन्तु डेन्समूर ने अपनी रॉयल्टी रक्खी। उसको पन्द्रह लाख डालर मिले। शोल्स ने और भी नमूने बनाये; और वह ऐसे नमूने बनाने में भी सफल हुआ जिसमें कि छपे अक्षर छापते समय दिखलाई पड़ते जायँ।

इसके पश्चात् और भी बहुत से नमूने बने; उन सब में थोड़े बहुत अन्तर के साथ नीचे लिखीं बातें प्रायः अवश्य होतीं हैं।

१—'की बोर्ड' (Key Board)। आजकल के प्रामाणिक टाइप राइटरों में 'शिफ्ट की' आदि को छोड़कर प्रायः ४० कुञ्जियाँ होती हैं। इनमें बड़े और छोटे अक्षरों के अतिरिक्त अंक, कोष्ठक-चिह्न, अवतरण-चिह्न और कॉमा आदि विराम चिह्न रहते हैं। एक एक कुञ्जी में दो दो टाइप रहते हैं। 'शिफ्ट की' (Shift Key) अर्थात् बदल कुञ्जी दबाने से बड़े अक्षर आते हैं। यदि बड़े ही बड़े अक्षर छापने हों तो एक और 'शिफ्ट लॉक' (Shift lock) दबाकर उसको स्थायी कर सकते हैं।

२—'स्पेस बार' (Space Bar) अर्थात् अवकाश दण्ड को दबाने से बेलन एक-एक अक्षर का स्थान छोड़ कर हटता जाता है। एक शब्द के बाद अन्तर देने के लिए यह स्पेस बार दबानी पड़ती है। 'बैक स्पेस' की (Back Space Key) द्वारा बेलन पीछे भी हटाया जा सकता है।

३—घंटी। एक लाइन के पूरे होने में जब दो या तीन अक्षरों का अवकाश रह जाता है तब एक घंटी बज जाती है जिससे कि टाइप करने वाला सचेत हो जाय। टाइप-राइटर में एक माप भी लगा रहता है जिससे कि लाइन की लम्बाई स्थिर की जा सकती है। इसी की सहायता से हाशिये की भी चौड़ाई निश्चित कर दी जाती है।

४—बेलन को घुमाने का लिवर। इसके द्वारा पंक्ति के छपजाने पर कागज़ हटाकर दूसरी पंक्ति के लिए स्थान कर लिया जाता है। पंक्तियों का यह अन्तर इच्छानुकूल कम या ज्यादह रक्खा जा सकता है।

५—फ़ीता बदलने की कुञ्जी। इसको घुमाने से इच्छानुकूल काली या लाल छपाई की जा सकती है।

इन बातों के अतिरिक्त टाइप राइटरों में बहुत सी विशेषताएँ होती हैं। आजकल बिना शब्द के टाइप राइटर चल गये हैं। पहले लोग एक एक कुञ्जी को देखकर टाइप किया करते थे, अब उँगलियाँ कुञ्जियों के स्थानानुकूल उनका स्पर्श करती चली जाती हैं, इसको स्पर्श-विधान (Touch System) कहते हैं। इसके अनुकूल टाइप करने वाला आखों से पट्टी बाँधकर भी टाइप कर सकते हैं। आजकल लोग टाइप राइटर पर साठ या सत्तर शब्द फ़ी मिनट टाइप कर लेते हैं। विद्युत्-धारा के प्रयोग से टाइप राइटरों की गति और भी बढ़ा दी जाती है।

हिन्दी, गुजराती आदि देशी भाषाओं के भी टाइप-टाइटर मिलते हैं। योरुप के देशों में पुस्तकों की प्रेस कापी प्रायः टाइप-राइटर से ही तैयार की जाती है। कार्बन पेपर लगाकर एक कागज़ की कई प्रतियाँ भी निकाली जा सकती हैं। आजकल तो टाइप-राइटर सरकारी दफ्तरों और व्यापारिक संस्थाओं का जीवन-प्राण हो रहा है।

अध्याय १५

चार्ल्स डार्विन का विकासवाद

१२ फरवरी सन् १८०६ ने संसार के दो महान् पुरुषों का जन्म देखा था—एक ऐब्राहम लिंकन (Abraham Lincon) और दूसरे चार्ल्स डार्विन। एक ने राजनैतिक क्षेत्र में हलचल मचा दी तो दूसरे ने मानसिक और धार्मिक क्षेत्र में लोगों का दृष्टिकोण एकदम पलट दिया। एक ने लोगों की भौतिक दासता दूर की तो दूसरे ने रूढ़ियों की मानसिक दासता हटाई। एक ने मनुष्यों को अपने जाति के लोगों के प्रति उदारता सिखाई तो दूसरे ने सृष्टि की एक नई व्याख्या कर तत्कालीन एवं भावी समाज को एक व्यापक-दृष्टि से विचार करना वतलाया।

चार्ल्स डार्विन डाक्टर रोवर्ट वारिंग डार्विन (Doctor Robert Waring Darwin) का द्वितीय पुत्र था। चार्ल्स की माता एक प्रसिद्ध कुम्हार की वेटी थी और उसके कोमल और सहृदय स्वभाव का प्रभाव चार्ल्स पर चिरकाल तक रहा, यद्यपि वह आठ वर्ष की अवस्था में ही मातृ-स्नेह से वञ्चित हो गया था। डाक्टर डार्विन में, यद्यपि वे वैज्ञानिक होने का दावा नहीं करते थे, सूक्ष्म निरीक्षण आदि वैज्ञानिकों के सव गुण थे, और वे अपनी सहृदयता और कर्त्तव्य-परायणता के कारण वड़े सफल और लोकप्रिय चिकित्सक थे।

चार्ल्स अपनी वहनों के साथ स्कूल भेजा गया। विद्याभ्यास में उसकी छोटी वहन केथराइन (Cathrine) उससे आगे निकल गई थी, किन्तु चार्ल्स ने अपने वाल्य-चापल्य के कारण अपने शिक्षकों का ध्यान आकर्षित कर लिया था। चंचल वालक वुरे नहीं होते हैं। चपलता के लिए कुछ कल्पना

शक्ति की आवश्यकता रहती है और वही शक्ति जब विज्ञान और साहित्य में लगाई जाती है, मनुष्य को वैज्ञानिक या कवि बना देती है। हमारे देश के बालकों में चपलता की कमी नहीं है किन्तु वे अपनी चपलता का खेल-कूद के बाहर और कहीं प्रयोग नहीं करते। चार्ल्स डार्विन ऐसा न था। वह चपल था किन्तु उसकी चपलता खेल कूद से निकल कर चातुर्य और प्रतिभा में परिणत हो गई। बालकपन में वह ऊट पटाँग बातें गढ़ कर अपने सहपाठियों को और कभी कभी अपने पिता को भी मूर्ख बनाने की कोशिस किया करता था।

एक बार चार्ल्स ने एक लड़के से कहा कि उसने एक नया आविष्कार किया है। और वह पौदों में भिन्न भिन्न प्रकार का रंगीन पानी देकर भिन्न भिन्न रंग के फूल पैदा कर सकता है। एक बार ऐसे ही उसने अपने पिता को बेवक़ूफ़ बनाना चाहा था। अपने बगीचे से बहुत से फल तोड़कर उसने एक झाड़ी में छिपा दिये, और हाँफता हुआ पिता के पास जाकर कहने लगा कि आज बड़ी भारी चोरी का पता लगा है। ये सब बातें

चार्ल्स डार्विन

डार्विनी की सजीवता और क्रियाशील प्रतिभा का परिचय देती हैं।

चार्ल्स को बालकपन से संग्रह और वर्गीकरण (Classification) का शौक़ था। आठ वर्ष की अवस्था में उसके पास कौड़ियों, शंखों, सिक्कों, मुहरों और धातुओं का अच्छा संग्रह हो गया था। स्कूल की शिक्षा चार्ल्स को विशेष रूप से आकर्षित न कर सकी और बहुत प्रयत्न करने पर उसके मास्टरों का फैसला था कि चार्ल्स की बुद्धि साधारण लड़कों से कुछ कम मालूम पड़ती है। उसके पिता ने एक बार नीचे लिखे शब्दों में असन्तोष प्रकट किया था "तुम शिकार, कुत्तों और चूहे पकड़ने के सिवाय और किसी बात की परवाह नहीं करते, और तुम अपने लिए, तथा अपने परिवार के लिए, कलंक बनोगे।" इस से यह न समझा जाय कि वह अपना समय नष्ट करता था। असली बात यह थी कि जिस बात में उसे रुचि थी, वह चाहे जितनी पेचीदा होती उसको अच्छी तरह समझ जाता और शेष बातों को वह समझाने पर भी नहीं समझता था। उसे शेक्सपीयर के पढ़ने में बड़ा आनन्द आता था। चार्ल्स १७ वर्ष की अवस्था में डाक्टरी पढ़ने एडिनबरा भेजा गया। वहाँ वह शल्य-चिकित्सा की ओर तो अधिक ध्यान न देता किन्तु डाक्टर ग्रांट की सत्संगति में समुद्री जानवरों की चीर फाड़ का अध्ययन करता।

डाक्टर डारविन ने दो वर्ष के अनुभव से जान लिया कि लड़के को पैतृक धंधे में अधिक रुचि नहीं मालूम पड़ती। उसने चार्ल्स को वहाँ से वापिस बुला लिया और उसे धर्मोपदेशक पादरी (Clergy man) बनाने को केम्ब्रिज भेज दिया। चार्ल्स के लिए जैसा एडिनबरा था वैसा ही केम्ब्रिज। वहाँ उसे लेटिन ग्रीक का अध्ययन करना पड़ता था। यह उसकी रुचि के प्रतिकूल था। वहाँ पर वह अपना समय अपने शिकारी

दोस्तों के साथ बिताया करता था।

केम्ब्रिज में चार्ल्स के ऊपर हेन्सलो (Henslowe) का अधिक प्रभाव पड़ा। प्रोफ़ेसर हेन्सलो ने केम्ब्रिज के सभी विद्यार्थियों को वैज्ञानिक वार्तालाप सुनने का स्थायी निमन्त्रण दे रक्खा था। डार्विन ने उस निमन्त्रण से पूरा लाभ उठाया। वह उनके यहाँ नियम से प्रति सप्ताह जाने लगा और उनकी देख रेख में वैज्ञानिक पुस्तकों का अध्ययन किया। वहाँ रह कर उसके मन में एक उत्कट अभिलाषा जाग्रत हुई कि किसी प्रकार से वह विज्ञान के भव्य-भवन में एक ईंट भी लगादे तो उसका जीवन सफल हो जाय। हेन्सलो ने डार्विन को भूगर्भ विद्या (Geology) के अध्ययन का परामर्श दिया और प्रोफ़ेसर सेजविक (Prof. Sedgwick) के साथ उसे नॉर्थ वेल्स की यात्रा पर भेज दिया।

इसके पश्चात् हेन्सलो ने उसे एक बड़ी यात्रा पर अपने साथ ले जाने का निमन्त्रण दिया। चार्ल्स के पिता ने इस निमन्त्रण को स्वीकार करने का विरोध किया किन्तु उसने इस शर्त पर जाने की आज्ञा दे दी कि यदि कोई बुद्धिमान आदमी इसके लिए अनुमति दे दे तो वह खुशी से चला जाय। उसके मामा वेजवुड ने अनुमति देदी और डार्विन ने बीगिल (Beagle) नाम के जहाज़ पर अपनी बड़ी यात्रा के लिए प्रस्थान किया। यह यात्रा लगभग पाँच वर्ष में (१८३१-३६) समाप्त हुई। इसी यात्रा में उसे भिन्न भिन्न प्रकार के जानवरों, और प्रस्तरी-भूत-पंजरों (Fossils) के निरीक्षण का सुअवसर मिला। इसी जहाज़ पर डार्विन के विकासवाद के मूल सिद्धान्तों का सूत्रपात हुआ।

डार्विन का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखमय था, किन्तु उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। वह अपने बाल

बच्चों से प्रेम करता और एक निश्चित कार्यक्रम के अनुकूल अपना जीवन व्यतीत करता था। इसी नियम-बद्ध जीवन-चर्या के कारण वह अपना स्वास्थ्य ठीक रख सका।

विकासवाद (Evolution) का विचार, यद्यपि डार्विन के नाम से सम्बन्ध है, बहुत पुराना है। प्राचीन भारतवर्ष तथा यूनान के लोग इसको किसी न किसी प्रकार से जानते थे। साँख्य दर्शन में भी विकासवाद का मूलरूप मौजूद था। मनुस्मृति में जो सृष्टि का क्रम दिया है, उसमें बहुत कुछ विकास वाद की झलक है। हिन्दुओं के अवतारों का विकास भी एक क्रम से ही हुआ है; पहले मत्स्य, फिर कूर्म, उसके पश्चात् वाराह और फिर नृसिंह। किन्तु प्राचीन लोगों ने अपने सिद्धान्त इस प्रकार प्रमाणित नहीं किये थे। जो बात भीतर हो उसका धीरे धीरे प्रकाश होना विकास (Evolution) कहलाता है।

'इवोल्व' (Evolve) का अर्थ बाहर निकालना है। विकास वाद का मूल सिद्धान्त यह है कि संसार में जानवरों की जितनी जातियाँ हैं वे अलग अलग नहीं बनी हैं वरन् वातावरण तथा अन्य स्वाभाविक कारणों से एक ही जाति में धीरे धीरे वैविध्य उत्पन्न होकर नई जातियों का जन्म हो जाता है।

विकास वाद के अनुकूल मनुष्य बन्दरों की सन्तान नहीं तो चचेरा भाई अवश्य है। यह बात कहने में तो बड़ी हास्यास्पद मालूम होती है और इस बात में डार्विन का बहुत मज़ाक भी उड़ाया गया है (डार्विन की शकल भी कुछ कुछ बन्दरों की सी थी) किन्तु विचारने पर यह बात युक्ति-संगत मालूम होती है। यदि किसी चीज़ का पूर्वरूप देखें तो उसमें और उसके विकसित रूप में बड़ा अन्तर मालूम होता है। पुराने ज़माने की बाइसिकिल, मोटर कार या प्रिन्टिङ्ग प्रेस और उनके आज

कल के प्रतिरूपों में ज़मीन आसमान का सा अन्तर मालूम होता है, किन्तु यदि उनको श्रेणीबद्ध देखा जाय तो अन्तर इतना आश्चर्यजनक नहीं मालूम होता है।

जंगली मनुष्यों और सभ्य मनुष्यों में ही बहुत कुछ अन्तर है। थोड़े विचार से देखने पर सारी सृष्टि में एकाकारता दिखलाई पड़ती है। पक्षी और मनुष्य देखने में कितने भिन्न मालूम होते हैं किन्तु उसमें भी बहुत कुछ समानता है। पक्षी के परों और मनुष्य के बाहुओं में बहुत कुछ एकरूपता है। पक्षी के पंजे भी मनुष्य के पैरों से बहुत कुछ मिलते हैं। अन्तर इतना ही है कि उनके पैर की उँगलियाँ अलग अलग दिखलाई पड़ती हैं, उनको जितना ज़मीन पर चलना पड़ता है उसके लिए इतने डबल पैर की आवश्यकता नहीं पड़ती। घोड़े का पैर भी मनुष्य के पैर के समान ही है। किन्तु उसके पैर की उँगलियाँ घिस गईं और एक अँगूठा ही मोटा बनकर सुम हो गया। प्राचीन काल में अर्थात् लाखों वर्ष पूर्व ऐसे घोड़े भी थे जिनके और उँगलियों के चिह्न थे उनके प्रस्तरीभूत-पंजर मिलते हैं। वातावरण के अनुकूल ही शरीर बन जाता है। आवश्यकता बड़ी चीज़ है। ऊँट के पैर रेगिस्तान में चलने के ही योग्य हैं, घोड़े के पैर वहाँ न काम देंगे, वहाँ पर 'कठिन भूमि कोमल पदगामी' के स्थान पर 'कोमल भूमि कठिन पदगामी' हो जायगा। हम यदि मनुष्य और बन्दरों के पंजरों का मिलान करें तो बड़ी समानता दिखलाई पड़ेगी। वनमानुष चिम्पाज़ी और गुरीला बन्दर मनुष्य के बहुत निकट हैं।

पंजरों की समानता के अतिरिक्त जानवरों के गर्भों में बहुत समानता होती है जितने ही कम दिन का गर्भ होता है उतनी ही निकट समानता मिलती है। आदमी के गर्भ में थोड़े बहुत अंश में विकास की श्रेणियाँ दुहराई भी

जाती हैं। मैंढक में तो यह आवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। मैंढ़क अपनी प्रारम्भिक अवस्था में मछली की तरह होता

चिम्पाञ्जी गुरीला मनुष्य

है, फिर धीरे धीरे उसका मैंढ़क का सा आकार हो जाता है। इस प्रकार सारी चर सृष्टि में एकाकारता दिखलाई पड़ती है, और उससे यह अनुमान होता है कि जानवरों की भिन्न भिन्न जातियों में पारिवारिक सम्बन्ध है।

अब प्रश्न यह होता है कि एक वंश के होते हुए भी जातियों में इतना भेद क्यों है। डार्विन का मूल कार्य इसी वैविध्य की व्याख्या में था। उसने देखा था कि थोड़े ही काल में जोड़ों के चुनाव से कबूतरों की कितनी उपजातियाँ हो जाती हैं। प्राकृति का चुनाव का कार्य लाखों वर्ष से चला आ रहा है, उसमें इतना वैविध्य हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

डार्विन का मूल सिद्धान्त है कि खाद्य पदार्थों की अपेक्षा जीवित शरीर धारियों की संख्या अधिक बढ़ती है। इस कारण जीवन संग्राग (Struggle for existence) उपस्थित हो जाता है। जो व्यक्ति वातावरण के अनुकूल होते हैं वे ज़िन्दा रहते है और जो अनुकूल नहीं होते वे मर जाते हैं, योग्यतम जीवन संग्राम में विजयी होता है, (The fittest Survives) जीवधारी कई प्रकार से वातावरण की अनुकूलता प्राप्त कर लेते हैं। कोई जीव शत्रुओं से बचने के लिए पत्तियों का रंग ग्रहण कर लेते हैं। बहुत से कीड़े हरे रंग के इसी कारण हो जाते हैं कि पत्तियों के रंग में मिल जाने के कारण उनके शत्रु उनको चुन कर न खा सकें। जलवायु के कारण तथा वृक्षों की ऊँचाई निचाई आदि के कारण वैविध्य हो जाता है। कहा जाता है कि ऊँट की गर्दन इसीलिए लम्बी हो गई है कि उसको ऊँचे वृक्षों से चारा लेने की आवश्यकता पड़ी होगी। कुछ वैविध्य स्वाभाविक भी होता है। स्वाभाविक भेद उत्पन्न होने पर यदि एक से गुण वालों का योग किया जाय तो ये गुण परम्परा (Hereditary) के नियम से और भी उग्र होते जाते हैं और एक नई जाति बन जाती है। समान भेद वालों का मिलना कृत्रिम रूप से जैसे कबूतरों, पेड़ों आदि में होता है और प्रकृति द्वारा स्वयं भी होता है, इसे प्राकृतिक चुनाव कहते हैं। स्वाभाविक भेद, प्राकृतिक चुनाव और परम्परा के नियमों से यह भेद हो जाता है। विकास-वाद के सिद्धान्त को प्रकाश में लाने वाले व्यक्तियों में लेम्बार्क (Lambarck) और वालेस (Wallace) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अब विकास वाद का मूल सिद्धान्त (सादा से पेचीदा परन्तु संगठित स्थिति पर पहुँचाना) समाज और साहित्य में भी लगाया जाता है।

अध्याय १६

सर जगदीशचन्द्र वसु

वसुधा में तुम धन्य वसु, सार्थक नाम तुम्हार।
ऋण चुकयो निज देश को, भरयो ज्ञान भण्डार॥
सिद्ध कीन सप्रमाण तुम, जीव वनस्पति माँहिं।
जड़ चेतन के वीच अब, रह्यौ भेद कछु नाँहि॥

सर जगदीशचन्द्र वसु भारत के उन इने गिने सपूतों में से हैं जिन्होंने अपने आविष्कारों द्वारा संसार के ज्ञान में वृद्धि करके वर्त्तमान भारत के ज्ञान सम्बन्धी ऋण को चुकाया है। वे ऐसे लोगों में से हैं, जिनका जन्म देश के सौभाग्य से ही होता है और जिनको कार्लाइल (Carlyle) के शब्दों में सच्चे वीर कह सकते हैं।

हमारे चरित्र नायक का जन्म ३० नवम्बर सन् १८५८ को हुआ था। आपके पूज्य पिता जी श्री भगवानचन्द्र वसु एक उच्च पदाधिकारी थे। आप सरकारी कामों में व्यस्त रहते हुए भी अपने वालक की ज्ञान-वृद्धि में पूर्ण सहयोग देते थे, यहाँ तक कि पिता पुत्र के प्रश्नोत्तर में वहुत रात वीत जाती और वालक जगदीश की दादी को जो दोनों पर समान अधिकार रखती थीं, वीच में पड़कर अपनी आज्ञा से वार्तालाप के प्रवाह को रोकना पड़ता था। श्री भगवानचन्द्र जी सरकारी नौकर होते हुए भी प्राचीन शिक्षा पद्धति के पक्षपाती थे। यद्यपि उनके मातहतों के लड़के अँग्रेजी मदर्सों में जाते तथापि उन्होंने अपने वालक को ग्रामीण पाठशाला की शिक्षा से वञ्चित रखना

उचित नहीं समझा। बाल्यकाल के संस्कारों का भावी जीवन पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। वसु महोदय की मानसिक वृत्ति को वैज्ञानिक झुकाव देने में इस ग्रामीण शिक्षा का बहुत कुछ हाथ है।

बालक वसु को मदर्से पहुँचाने का कार्य कारागार से छूटे हुए एक प्रसिद्ध डाकू को जिसे कि उसके पिता ने ही पकड़ कर

सर जगदीशचन्द्र वसु

जेल भिजवाया था, सौंपा गया। कारागार में डाकू का बहुत सुधार हो गया था और उसके वहाँ से मुक्त होने पर उसकी

आजीविका का कोई सहारा न होने के कारण श्री भगवानचन्द्र ने दया वश उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया था। सम्भवतः कोई ही धाय अपने पोषित बालक की ऐसी अच्छी देख भाल करती होगी जैसी कि उस बूढ़े डाकू ने की। डाकू ने अपनी स्वामिभक्ति और बालक के प्रति वात्सल्य भाव से दो बातें प्रमाणित करदीं--एक तो यह कि मनुष्य का हृदय 'वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल होता है' दूसरी यह कि सहृदयता का व्यवहार पतित का भी उद्धार कर सकता है। रास्ते में बालक वसु इस डाकू से साहस-पूर्ण घटनाओं का हाल सुना करते थे। उसके शरीर पर अस्त्र प्रहार जन्य व्रणों के चिह्न उसके पूर्व पराक्रम का परिचय देते थे। उसके बड़े बड़े मोर्चे लेने की बात और उनमें से बाल बाल बच जाने का वृत्तान्त बालक वसु के कौतूहल की वृद्धि करता था। उस होनहार विद्यार्थी के कौतूहल की वृद्धि डाकू की बातों से होती थी और प्रकृति प्रेम गाँव के मल्लाहों के लड़कों की वार्तालाप से जाग्रत होता था।

वैज्ञानिक के लिए कौतूहल-वुद्धि और प्रकृति प्रेम बड़ी आवश्यक वृत्तियाँ हैं और ये दोनों ही इस बालक को गाँव की पाठशाला में मिलीं। इसके सम्बन्ध में वे लिखते हैं 'मैं देहाती पाठशालाओं में भेजा गया। वहाँ मैं किसानों और मछुओं के लड़कों के साथ पढ़ता था। ये लड़के मुझे भयंकर जंगली जानवरों की, जो जंगल में घूमा करते थे तथा उन जीवों की जो बड़ी बड़ी नदियों के तथा तालावों के अगाध जल में, बहुत गहरे धँस या डूब जाते हैं, बातें सुनाया करते थे। यहीं मैंने सच्ची मनुष्यता का पाठ पढ़ा। यहीं मैंने इन लोगों से प्रकृति का प्रेम पाया'।

प्रारंभिक शिक्षा गाँव के स्कूल में प्राप्त कर बालक

जगदीश उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ते भेजे गये। वहाँ वे सेन्ट ज़ेवियर कालेज से ग्रेज्युएट हुए। ग्रेज्युएट होने के पश्चात् उनको भी और लड़कों की भाँति सिविल सर्विस के लिए इँगलैण्ड जाने की धुन सवार हुई। किन्तु नव युवक वसु के पूज्य पिता जी अपने लड़के के स्वाभाविक मानसिक झुकाव को उसकी अपेक्षा अधिक समझते थे। स्वयं अधिकारी वर्ग में होते हुए अपने बालक को भी पदाधिकारी बनाने का मोह संवरण करना साधारण बात नहीं है। साधारण मनुष्य भी अपने बच्चों को डिप्टी कलक्टर और तहसीलदार बनाने की मनोकामनाएँ किया करते हैं। फिर श्री भगवानचन्द्र जी तो स्वयं उच्च पदाधिकारी ठहरे। किन्तु अधिकार-लालसा का भूत उनके निश्चय को विचलित न कर सका। युवक वसु इँगलिस्तान भेजे गए किन्तु सिविल सर्विस के लिए नहीं, वरन् विज्ञान के अध्ययन के लिए। यदि वे सिविल सर्विस के लिए जाते तो जिले या कमिश्नरी के बाहर उनको कोई जानता भी नहीं। यह उनके पिता का ही शुभ संकल्प था जो उन्हें विश्व-ख्याति के क्षेत्र में ले आया।

इँगलिस्तान से लौटने पर वे कलकत्ते के प्रेसीडैन्सी कालेज में भौतिक विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए। उन दिनों आज-कल की सी प्रयोगशालाएँ न थीं। प्रयोगों के सम्बन्ध में जो बात विद्यार्थियों को बतलानी होती थी उसके नकशे ब्लेक बोर्डों पर अंकित कर दिये जाते थे। उनके ही दस वर्ष के अदम्य उत्साह और परिश्रम से प्रेसीडेन्सी कालेज में एक प्रयोगशाला तैयार हुई। यदि उन्हें आजकल की सी प्रयोगशाला मिल जाती तो शायद वे इतने सूक्ष्म यंत्र भारतवर्ष में तैयार न कर पाते। पक्की पकाई रोटी खाने से मनुष्य में आलस्य आ जाता है और आत्म-निर्भरता नहीं रहती। जब उनकी देख रेख में देशी

मिस्त्रियों ने प्रयोग-शाला के और यंत्र वनाये तो वे वसु महोदय के सूक्ष्म यंत्र वनाने में भी समर्थ हुए। इस प्रकार प्रयोग-शाला का निर्माण कर वे अपनी वैज्ञानिक खोज में लग गये। आरम्भ में उन्होंने वि ुत के सम्वन्ध में कई वातों की खोज की। प्रयोगों से उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि जो औषधियाँ मनुष्य के हृदय की गति को रोकने या उत्तेजित करने में जैसा प्रभाव रखती हैं, वनस्पतियों पर भी उनका वैसा ही प्रभाव होता है।

इनके प्रयोगों में छुई-मुई और वन चाण्डाल (Telegraph Plant) से विशेष काम लिया जाता है। वसु महोदय इन पौदों को अपने साथ योरोप में भी ले गये थे। उनको वहाँ की ठंडी आवहवा से सुरक्षित रखने में उनके शिष्य को वड़ी सावधानी रखनी पड़ती थी। वह उनका महत्व जानता था कि उनके स्वास्थ्य के ऊपर गुरुदेव का और उनके साथ सारे भारतवर्ष का यश निर्भर था और वह उनकी रक्षा के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर करने को तैयार था। जव वसु महोदय रॉयल इन्स्टीट्यूट के सामने व्याख्यान देने वाले थे तव उनके पौदे मुरझा गये थे और उनको भय था कि शायद पाश्चात्य जगत में उनकी हँसी हो, किन्तु कुछ देर पूर्व के दिये हुए उत्तेजकों से पौदों में जान आगई थी और वे यंत्र पर अपने अनुभव लिखने लगे थे।

सर जगदीशचन्द्र केवल पौदों में ही जीवन नहीं मानते वरन् धातुओं में भी जीवन की झलक स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि धातु-मय सूक्ष्म यंत्रों का कभी-कभी ठीक काम न करना, उनकी थकावट के कारण होता है और वह थकावट औषधियों के प्रयोग से दूर हो सकती है।

सर जगदीशचन्द्र वसु के सिद्धान्तों का वड़ा महत्व इस

वात में है कि उनके प्रयोगों द्वारा निरवयव और सावयव (Inorganic and Organic) द्रव्य के बीच में कोई अन्तर नहीं रहा। जब सभी पदार्थों में जीवन के स्फुरण दिखलाई पड़ते हैं तब यह प्रश्न नहीं रहता कि वेजान वस्तुओं से जानदार वस्तुओं की किस प्रकार उत्पत्ति होती है। उनके प्रयोगों के फल स्वरूप वैज्ञानिक संसार को यह स्वीकार करना पड़ता है कि सारे संसार में एक ही जीवन धारा प्रवाहित हो रही है।

वसु महोदय के व्याख्यान ऑक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, वीना, पैरिस आदि नगरों की प्रधान प्रधान वैज्ञानिक संस्थाओं में हुए और वहाँ उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा हुई है।

स्फटिक द्वारा विद्युत प्रकाश रश्मियों के ध्रुवी-करण (Polarization of Crystals) के सम्बन्ध में जो गवेषणाएँ थीं, उनका महत्व वैज्ञानिक संसार ने शीघ्र ही स्वीकार कर लिया। लॉर्ड केलविन जैसे उद्भट वैज्ञानिक ने उनकी गवेपणाओं की भूरि भूरि प्रशंसा की। भारत सरकार ने वसु महोदय को अपनी खोज के प्रचार के लिए योरोप भेजा जहाँ उनका वड़ा मान हुआ।

इसके पश्चात् उन्होंने विद्युत सम्वन्धी और भी कई गवेपणाएँ की और वेतार के तार के सम्बन्ध में भी वहुत से महत्व-पूर्ण प्रयोग किये। इस सम्वन्ध में नाम मारकोनी का ही हुआ, क्योंकि जिसको सवसे अधिक सफलता होती है उसी को श्रेय मिलता है।

वसु महोदय के सम्बन्ध में इतना कह देना आवश्यक है कि इन्होंने वे तार के तार को अपने सूक्ष्म ग्राहक यंत्र द्वारा व्यावहारिक सफलता देने में जो योग दिया था, उसका संसार से कोई आर्थिक मूल्य नहीं लिया। वे ज्ञान को गाजर मूली की

भाँति क्रय विक्रय का विपय नहीं बनाना चाहते थे। विद्युत तरंगों के सम्बन्ध में जो उनके अनुसन्धान हैं वे वैज्ञानिक जगत में सर्व-मान्य हैं, उनका उल्लेख अँग्रेज़ी विश्व कोप में भी हुआ है।

डाक्टर जगदीशचन्द्र का जो विशेष कार्य है वह पौदों में जीवन प्रमाणित करने का है। यद्यपि हमारे यहाँ वनस्पतियों में जीव माना जाता है तथापि इसको प्रयोग द्वारा सिद्ध कर देना वसु महोदय का ही काम था। डाक्टर साहब ने अपने सूक्ष्म यंत्रों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि जिस प्रकार मनुष्य भय से काँप उठता है उसी प्रकार वृक्ष भी भय से काँप उठते हैं। जब मनुष्य को कोई मानसिक वेदना होती है तो उनकी सारी क्रियाओं में अन्तर आ जाता है। इसी प्रकार जब पौदे मरण के भय में होते हैं तब उनमें दूसरे प्रकार का ही स्पन्दन होने लगता है। उनका कम्पन वसु महोदय के आविष्कृत यंत्र अनुनादी लेखक (Resonent Recorder) में अंकित हो जाते हैं। यह यन्त्र इतना सूक्ष्म है कि इसके द्वारा पौदों के प्रत्यक्षीकरण का समय एक सैकिण्ड के सहस्रवें भाग तक नापा जा सकता है। किसी बाहरी उत्तेजक की उपस्थिति में किसी सजीव पदार्थ में प्रतिक्रिया होने में जो समय लगता है उसे प्रत्यक्षीकरण का समय (Perception time) कहते हैं।

वसु महोदय केवल वैज्ञानिक ही नहीं हैं, वरन् पूरे देश-भक्त भी हैं। भारत की गौरव-रक्षा करना उनका मुख्य ध्येय रहा है। उन्होंने वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए कलकत्ते में विज्ञान मन्दिर की स्थापना की है।

वसु महोदय अपने देश के विश्वविद्यालयों से यह आशा करते हैं कि वे सच्चे वैज्ञानिक उत्पन्न करें। वे

विश्वविद्यालयों के संचालकों से इस प्रकार के प्रश्न करते हैं:—ज्ञान की किस शाखा का आपने विकास किया है? आपकी सहायता से कौन कौन से आविष्कार और अन्वेषण हुए हैं? क्या आपके विश्वविद्यालय संसार के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के लिए केवल विद्यार्थी तैयार करने का काम ही करते रहेंगे? क्या आप यह नहीं चाहते कि आपके विश्वविद्यालयों में भी विदेशों से विद्यार्थियों के झुण्ड के झुण्ड आयँ और यहाँ वह नया ज्ञान प्राप्त करें जो संसार में अपूर्व हो? यह बात निरी स्वप्न नहीं है। यह सम्भावनीय है। पूर्व काल में भी भारत में यह बात हुई थी। नालन्द और तक्षिला के विद्यालयों में सुदूर देशों के विद्यार्थी ज्ञानामृत द्वारा अपनी मानसिक-पिपासा को शान्त करने के लिए हजारों की संख्या में यहाँ आते थे।"

भारत के भविष्य के सम्बन्ध में वसु महोदय निराशा वादी नहीं हैं। मैसूर विश्वविद्यालय के उपाधिवितरण के अवसर पर उन्होंने बड़ा प्रोत्साहन पूर्ण अभिभाषण दिया था। उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

"जो असम्भव है या जो केवल दूसरे देशों में ही सम्भव है, उन सब विषयों की बात आज मैं तुम्हें नहीं सुनाऊँगा। भारतवर्ष में जो किया जा सकता है और जो किया गया है उसी की बात कहूँगा। तुम लोगों को जिन सब विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है, मुझे भी उन सब का सामना करना पड़ा है और अब भी करना पड़ता है। अतः जब निराशा का अन्धकार सामने आय तुम इस बात को याद रखना कि बहुत वर्षों की तत्परता के साथ विघ्न बाधाओं का सामना करने से पहिले मैं आशा का क्षीण प्रकाश भी नहीं देख सकता था, तथापि मेरा यह विश्वास था कि परि-

स्थिति के आगे हार मानना मनुष्यत्व नहीं है। असीम साहस के साथ उनको परास्त करना ही सच्चा मनुष्यत्व है। मैं जानता हूँ कि पहले (अतीत काल में) जो हुआ है वही भविष्य में भी होगा। भूतकाल को केवल स्वप्न स्मृति मानकर, उसकी उपेक्षा करने से काम न चलेगा।"

अध्याय १७

डाक्टर सिम्प्सन और क्लोरोफ़ॉर्म

शल्य-चिकित्सा का प्रचार बहुत दिनों से है। चरक सुश्रुत आदि आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थों में अनेक प्रकार के शल्यों (नश्तरों) का उल्लेख आता है। तत्कालीन दाँत उखाड़ने के यंत्र और आधुनिक यंत्रों में बहुत कुछ समानता थी, अश्विनी कुमारों ने दक्ष प्रजापति के कटे हुए सिर को जोड़ दिया था। अपने शल्य प्रयोगों को सफल बनाने के लिए उन दिनों वैद्य लोग एक प्रकार की शराब से रोगी को ऐसा नशा करा देते थे जिससे कि नश्तर की वेदना न मालूम हो। 'मत्तः शस्त्रं न बुध्यति' अर्थात् नशे में शस्त्र का ज्ञान नहीं होता।

इस प्रकार पीड़ा की अनुभूति कम करने में अफ़ीम, शराब आदि मादक द्रव्यों का प्रयोग बहुत दिन से चला आता है, किन्तु इन द्रव्यों से थोड़ी बहुत चेतना बनी ही रहती थी। चेतना को बिल्कुल स्थगित कर देने वाले प्रयोगों का प्रचार यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ था। पहले पहल सर हम्फ़री डेवी (Sir Humphrey Davy) और माइकल फ़ेरेडे (Michael Faraday) ने इस बात को प्रमाणित किया था कि ईथर और नाइट्रस ऑक्साइड का मिश्रण, जिसको हँसाने वाली गैस (Laughing gas) भी कहते हैं, मनुष्य को चेतना शून्य कर देता है। किन्तु कुछ दिनों तक इस ज्ञान का कोई व्यावहारिक लाभ नहीं उठाया गया। पहले पहल डाक्टर होरेस

वैल्स ने इस गैस का अपने ही ऊपर प्रयोग कर अपना एक दाँत उखड़वाया। उनको कोई वेदना नहीं हुई। उन्होंने इस गैस का बहुत से लोगों पर प्रयोग किया।

डाक्टर मोर्टन ने भी इसी प्रकार पहले पहल एक कुत्ते पर ईथर का प्रयोग किया। उसमें सफलता होने पर उन्होंने मनुष्यों पर प्रयोग करना आरम्भ किया। एक दिन एक रोगी दाँत उखड़वाने को उनके पास गया। वह दाँत उखड़वाने की वेदना सहन नहीं कर सकता था। उसने डाक्टर से प्रस्ताव किया कि वे उसको मेसमेरिज़म द्वारा अचेत करदें। डाक्टर ने कहा कि उनके पास मेसमेरिज़म से भी अधिक प्रभावशालिनी वस्तु है। उन्होंने अपना रूमाल ईथर में भिगोकर उसे सुँघाया और लम्प के प्रकाश में उसका गहरा जमा हुआ दाँत उखाड़ दिया। रोगी एक मिनट में ही चैतन्य हो गया और उसे मालूम भी नहीं हुआ कि उसका दाँत उखड़ गया।

अचेतन-कारक-द्रव्यों (Anaesthetics) के इतिहास की इतिश्री यहीं नहीं हो जाती। आजकल ऑपरेशनों में क्लोरोफ़ार्म (Chloroform) का प्रयोग होता है। क्लोरोफ़ॉर्म को एक जर्मन रसायनिक ने बनाया था। इसका प्रयोग औषधि रूप से तो होता था, किन्तु इसके सूंघने के प्रभाव को लोग नहीं जानते थे। सन् १८४७ में एडिनबरा के डाक्टर सिम्प्सन ने क्लोरोफ़ॉर्म के अचेतनाकारक गुण की ओर वैज्ञानिक संसार का ध्यान आकर्षित किया। यहाँ पर उनका संक्षिप्त जीवन वृत्त बतला देना आवश्यक है।

जेम्स सिम्प्सन एक ग्रामीण नानबाई के सब से छोटे लड़के थे। ये सात भाई थे किन्तु ये सब से अधिक प्रतिभा-शाली थे। इन्होंने चार वर्ष की अवस्था में स्कूल जाना प्रारम्भ

कर दिया था। इस अवस्था में ही इन्होंने इतनी चेतनता दिखलाई कि इनके पिता तथा भाइयों ने यह निश्चय कर लिया कि चाहे जो कुछ हो होनहार बालक को विश्वविद्यालय की शिक्षा अवश्य दिलाई जायगी। ये लोग अपनी आय का बहुत थोड़ा भाग अपने निर्वाह के लिए रखते, और शेष धन इनकी शिक्षा के लिए दे देते। चौदह वर्ष की अवस्था ही में ये एडिनवरा के विश्वविद्यालय भेज दिये गये। सन् १८३२ में जब कि इनकी अवस्था इक्कीस वर्ष की होगी, इन्होंने एम० डी० (M.D.) की परीक्षा पास की। शीघ्र ही ये अपने व्यवसाय में अग्रगण्य हो गये।

सन् १८४६ में इन्होंने यह सुना कि दो अमेरिका-निवासी डाक्टर (विलियम मोर्टन और चार्ल्स जेक्सन) अपने ऑपरेशनों में अचेतन-कारक-द्रव्यों का प्रयोग करने लगे हैं। डाक्टर सिम्प्सन पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। वे चाहते थे कि किसी प्रकार ऑपरेशनों में रोगियों का रोना चिल्लाना और हाथ पैर पीटना जाता रहे। उनको इस बात की लगन लग गई कि ऐसे अचेतन-कारक-द्रव्य की खोज की जाय जो ईथर से भी अधिक प्रभावशाली हो और जिसमें अधिक उपकरणों (सामग्री) की आवश्यकता न हो।

४ नवम्बर सन् १८४७ को सिम्प्सन और उनके दो सहायकों (कीथ और डंकन) ने क्लोरोफ़ार्म को सूंघा। तीनों ही अचेत होकर अपनी कुर्सियों से नीचे लुढ़क गये। थोड़ी देर में उनका नौकर आया। उसने इन लोगों को लोट पोट देख कर कोई आश्चर्य नहीं किया और न घबराया ही, क्योंकि उस समय के बड़े आदमियों के घर में ऐसी बात होना कोई अचम्भे की बात न थी, प्रायः लोग मदिरा के प्रभाव से लोट पोट हो जाया करते हैं। वह उन लोगों के कॉलर और मफलर ठीक

करके चला गया। थोड़ी देर में उन लोगों को होश आया। प्रयोग की सफलता प्रमाणित हुई और विज्ञान की दिन दूनी रात चौगुनी होने वाली विजय की सूची में एक संख्या बढ़ी। इतना ही नहीं, मानव-जाति का अकथनीय उपकार हुआ। शल्य-क्रिया के समय रोना, चिल्लाना और कूदने, फाँदने और अमानवता के दृश्यों का अन्त हुआ। इस आविष्कार के कारण डाक्टर लोग भी शान्ति पूर्वक अपना काम कर सकते हैं। क्लोरोफ़ॉर्म के आविष्कारक को तत्कालीन गवर्नमेण्ट की ओर से यथेष्ट सम्मान मिला। वह बेरोनेट (Baronet) के पद से विभूषित हुआ और राज्य-वैद्यों में उसका नाम लिखा गया।

क्लोरोफ़ॉर्म का अब बहुत प्रचार बढ़ गया है। इसके कारण डाक्टर लोग मनुष्य के शरीर को चेतना शून्य (Incensible) बना कर उसकी निर्भय रूप से चीड़ फाड़ करते रहते हैं। आज कल विशेषीकरण (Specialisation) के समय में क्लोरोफ़ॉर्म देने वाले विशेषज्ञ डाक्टर भी हो गये हैं। क्लोरोफ़ॉर्म देना सहज कार्य नहीं; जिस ऑपरेशन में जितनी देर लगे, उसी के अनुकूल मात्रा में क्लोरोफ़ॉर्म दिया जाना चाहिए। यदि शल्य-क्रिया के बीच में चेतनता आ जाती है तो रोगी बहुत ऊधम मचाता है, और ऑपरेशन विफल हो जाने का भय रहता है। क्लोरोफॉर्म अधिक मात्रा में भी देना ठीक नहीं; आज कल ऐसे यंत्र बन गये हैं जिनके द्वारा क्लोरोफ़ॉर्म की मात्रा स्वयं नियंत्रित हो जाती है। क्लोरोफॉर्म देने के पहले रोगी का पेट साफ़ किया जाता है, और निराहार रक्खा जाता है। ऑपरेशन के पूर्व कुछ खा लेने से होश में आने पर रोगी को वमन होने लगता है। उसमें कष्ट अवश्य होता है, किन्तु वह कष्ट शल्य-क्रिया के कष्ट से कहीं कम होता है, और खाने का ध्यान रखने से वमन का भी

कष्ट नहीं होता।

आज कल छोटे ऑपरेशन के लिए स्थानीय अचेतनकारक वस्तुओं (Local Anaesthetics) का प्रयोग किया जाता है। आजकल दाँत उखाड़ने में कोकेन आदि अचेतनकारक द्रव्यों द्वारा उतने ही स्थान को चेतना-शून्य कर दिया जाता है। क्लोरोफ़ॉर्म से जो थोड़ी बहुत हानि की सम्भावना बनी रहती है, वह भी इसमें नहीं रहती है, किन्तु बड़े ऑपरेशनों के लिए क्लोरोफ़ार्म सब से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है और इसके लिए संसार आविष्कारक का चिर-ऋणी रहेगा।

अध्याय १८

पास्च्युर (Pasteur) और कीटाणुवाद

मानव जाति के शत्रुओं में उसके शरीर में ही अड्डा जमाने वाले रोग सबसे बड़े और भयङ्कर हैं। इनमें से कुछ का तो साधारण औपधियों के उपचार से शमन हो जाता है और कुछ शीघ्र ही अपने आश्रयदाता के प्राणान्तक बन जाते हैं। पहले ज़माने में चेचक भी इसी प्रकार का रोग था किन्तु डाक्टर जेनर (Doctor Jenner) के टीके (Vaccine) ने सहस्रों मनुष्यों को मरने और कुरूप होने से बचा दिया है। विज्ञान की इस श्लाघनीय विजय से सभी पाठक परिचित हैं। जिस प्रकार डाक्टर जेनर का नाम चेचक के टीके के साथ लिया जाता है उसी प्रकार पास्च्युर का नाम हैज़े और श्वानदंश सम्बन्धी पागलपन के टीकों के साथ लिया जाता है। श्वानदंश सम्बन्धी पागलपन यद्यपि व्यापक रोग नहीं है तथापि बहुत भयंकर रोग है। इसका शिकार वास्तव में कुत्ते की ही मौत मरता है। पागल कुत्ते का ज़हर जब शरीर में काम करने लग जाता है तब मनुष्य भी कुत्ते की भाँति पागल हो जाता है, उसके मुँह से लार टपकने लगती है; वह कुत्ते की भाँति ही मनुष्य को काटने दौड़ता है और उसका काटना भी घातक होता है। जल को देखकर उसे भय लगता है; प्यास की तीव्रता होने पर भी वह पानी नहीं पी सकता है और विपम वेदना से व्याकुल हो जाता है। इसीलिए इस रोग को अँगरेज़ी में 'हाइड्रो फोबिया' (Hydro-Phobea) अर्थात्

जलातंक कहते हैं। 'हाइड्रो' का अर्थ है जल।

पास्च्युर के आविष्कारों से लोगों को ऐसे भयङ्कर रोग से शरण ही नहीं मिली वरन् सारे चिकित्सा विज्ञान में एक युगांतर उपस्थित हो गया। आजकल रोगों की उत्पत्ति तथा उनके प्रसार की व्याख्या कीटाणुओं द्वारा की जाती है। प्रत्येक रोग के भिन्न-भिन्न कीटाणु (Micro-organisms) होते हैं जो अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा ही देखे जा सकते हैं। वे वायु और जल के द्वारा शरीर में प्रवेश कर, शरीर में बहुत से अण्डे-बच्चे देकर अपनी संख्या बढ़ा लेते हैं; और मनुष्य के शरीर पर अधिकार जमा कर उसके प्राणों को हर लेते हैं। पास्च्युर ने इन कीटाणुओं की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित कर मानव जाति की बड़ी सेवा की है।

लुई पास्च्युर (Louis Pasteur) का जन्म सन् १८२२ में हुआ था। इसके पिता के यहाँ चमड़े पकाने का कारखाना था। उसके पिता को सदा यह चिन्ता रहती थी कि उनके लड़के का जीवन उनका सा न हो। रात्रि को घर लौटकर आने पर वे बालक को अपने घुटने पर बैठाल कर कहा करते थे, "लुई! क्या ही अच्छा हो कि तू स्थानीय कालेज में प्रोफेसर हो जाय; यहाँ पर मैं सारे दिन इन दुर्गन्धमय खालों को पका कर चमड़ा तैयार करता रहता हूँ। मैंने बहुत दिनों सैनिक का कठिन जीवन व्यतीत करते हुए घर से बाहर बिताया है। मेरे पुत्र! तुमको शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए जिससे कि तुम सुख से रह सको।" उस समय लुई की अवस्था केवल दो वर्ष की ही थी। वह उनकी गल-मुच्छें पकड़ कर इस प्रश्न का उत्तर दिया करता था और माता भी यह कह देती थी कि बच्चे को अवश्य शिक्षा दी जायगी। किन्तु पास्च्युर दम्पति के सुख-स्वप्नों में यह बात कभी नहीं

आई थी कि लुई संसार में इतना नाम पैदा करेगा।

उपर्युक्त निश्चय के अनुकूल बालक को शिक्षा देने का आयोजन किया गया और वह स्कूल भेजा गया। पिता महोदय बच्चे की शिक्षा की खूब देख-रेख करने लगे। वह पढ़ने में कोई जल्दी नहीं करता था, इस बात से और लोग तो कुछ असन्तुष्ट थे किन्तु उसके प्राधानाध्यापक उस सुस्ती का रहस्य समझ गये थे। वह यह था कि जब तक वह बालक किसी बात को समझ नहीं लेता, तब तक वह उसका ग्रहण नहीं करता; इसलिए वे निराश नहीं हुए और उसे प्रोत्साहन देने लगे। अन्य बालकों की भाँति दिन में लुई भी खेलना चाहता था; और साथ के बच्चों की पुकार को वह शौक़ से सुनता और उनकी आवाज में आवाज़ मिला कर खेल के लिए बाहर दौड़ जाया करता था। कभी-कभी वह मछली के शिकार के लिए स्कूल से भाग जाता था। इसके अतिरिक्त उसे चित्र बनाने का बड़ा शौक़ था और वह पढ़ने के बजाय अपने मास्टरों और सहपाठियों के चित्र बनाया करता था। यदि उसकी यह प्रवृत्ति बहुत दिन रहती तो वह वैज्ञानिक न होकर चित्रकार बन जाता। कुछ दिनों पश्चात् उसकी कर्तव्य-बुद्धि जाग्रत हुई और उसने सोचा कि उसके माता-पिता उसको शिक्षित बनाने के लिए कितना परिश्रम कर रहे हैं, उसको इस प्रकार खिलवाड़ में समय न बिताना चाहिए। ऐसा सोच कर उसने मछली के शिकार की बंसी और काँटे तथा चित्रकारी की पेंसिल और तूलिका को विदा दी और बड़े परिश्रम से विद्याभ्यास करने लगा। उसके अध्यापकगण, यद्यपि उसकी मौलिकता से प्रसन्न थे, तथापि उसकी गणना साधारण विद्यार्थियों में ही थी।

वह उच्च शिक्षा के लिए पेरिस भेजा गया; वहाँ उसका

मन न लगा। उसके घर के आँगन में चमड़े की जो गन्ध आती थी, वह उसे आकर्षित करने लगी और वह घर लौटने के लिए लालायित हो उठा। एक महीने पश्चात् वह अपने पिता के साथ घर लौट आया। उसके पश्चात् वह अपने गाँव के निकट के ही कालेज में गया। वहाँ उसको कुछ अध्यापन कार्य भी मिल गया और उससे उसको भोजन के अतिरिक्त लगभग बारह पौण्ड वार्षिक (चौदह या पन्द्रह रुपये मासिक) की आय होने लग गई।

उसके पत्रों से विदित होता है कि उसे काम में लगे रहना बड़ा अच्छा लगता था, किन्तु वह काम में लगे रहने पर भी अपने घर के लोगों को नहीं भूलता था। उसने अपनी बहनों को एक बार इस आशय का पत्र लिखा था--प्यारी बहनो! मेहनत करो और एक दूसरे से प्रेम का व्यवहार रक्खो। जब एक बार काम करने का अभ्यास हो जाता है तो बिना काम किये रहा नहीं जाता, इसके अतिरिक्त सब कुछ काम पर ही निर्भर है।

सन् १८४४ से ४७ तक वह रसायन शास्त्र के क्षेत्र में काम करता रहा था। कलमों (Crystals) पर ध्रुवित प्रकाश (Polarised Light) का प्रभाव जाँचने के लिए उसको अनुवीक्षण यंत्र से काम लेना पड़ता था। इसके पश्चात् मादक रसों के कड़वे या खट्टे हो जाने के सम्बन्ध में कुछ किण्वीकृत अर्थात् सड़ कर खमीर की भाँति उठे हुए (Fermented) पदार्थों की परीक्षा करने का अवसर मिला। इस प्रकार उसका परिचय कीटाणुओं और अनुवीक्षण यंत्र से हो गया और यह विषय उसके लिए रुचिकर बन गया।

लुई पास्च्युर को विज्ञान में इतनी रुचि थी कि वह अपनी गवेषणाओं में सदा मग्न रहता था, यहाँ तक कि जिस रोज

उसकी शादी होने वाली थी उस रोज भी वह अपने एक मित्र द्वारा स्मरण दिलाये जाने पर गिर्जाघर गया। जब ऐसी लगन होती है तभी मनुष्य अपने कार्य में सफल होता है।

यद्यपि कुछ दैवी प्रेरणा के कारण लुई को अपने जीवन के महत् कार्य की पूर्ति के लिए सुअवसर मिलते रहे तथापि उन अवसरों से पूरा लाभ उठाने का श्रेय उसी को है। कोई बात आकस्मिक रूप से नहीं होती। जिन बातों के सम्बन्ध में मनुष्य विचार किया करता है, उसी सम्बन्ध में आकस्मिक घटनाएँ फलवती होती हैं। पास्च्युर का मुख्य कार्य कीटाणुओं के सम्बन्ध में है। उस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर उसे शीघ्र ही मिल गया; बिल्ली के भागों छींका टूट पड़ा। फ्रान्स में रेशम का व्यवसाय बहुत होता है। उस देश के दक्षिण भाग में लोग रेशम के कीड़े पाल कर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। उनके घर शहतूत की पत्तियों से भरे रहते थे। एक बार कीड़ों को कोई संक्रामक रोग लग गया। कीड़े मरने लगे, अंडों में से बच्चे पैदा होना बन्द हो गया। बच्चे यदि पैदा भी होते तो बढ़ते नहीं थे। लोगों को यह आशंका होने लगी कि वहाँ का रेशम का व्यवसाय कहीं दूसरी जगह न चला जाय और उनकी आजीविका हाथ से जाय। सन् १८६५ में रेशम के व्यवसायियों ने हैरान होकर सरकार से सहायता की प्रार्थना की। लोगों ने कहा कि पास्च्युर ही ऐसा मनुष्य है जो इस कार्य को कर सकेगा क्योंकि वह अछूते कार्य में हाथ डालने में शंकित नहीं होता। उसने रोगी कीड़ों के अनुवीक्षण यंत्र द्वारा निरीक्षण से यह पाया कि उनके ऊपर उपजीवी कीटाणु (Parasites) रहते हैं। उसके पश्चात् उसको यह भी ज्ञात हुआ कि जब कोई स्वस्थ कीड़ा ऐसे पत्ते को खाता है जिस पर कि अस्वस्थ कीड़ा

बैठ चुका हो तब उसको भी वही रोग हो जाता है। उसने स्वस्थ और अस्वस्थ कीड़ों को अलग कर अस्वस्थ कीड़ों और उनके अंडों के नष्ट कर देने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न से रेशम के कीड़ों में से वह रोग जाता रहा। पास्च्युर ने इसी आधार पर मनुष्यों में से भी संक्रामक रोगों के दूर करने के लिए प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। उसके कीटाणुवाद ने शल्य चिकित्सा (Surgery) में युगान्तर उपस्थित कर दिया। वह अस्पतालों में जाता और शल्य चिकित्सकों के हाथ से उनके नश्तर लेकर उनको बतलाता कि जब तक वे उन नश्तरों को निरुत्पादक (Sterilised) न बनायँगे तब तक वे चिकित्सा के बदले में अपने रोगियों को हानि पहुँचायँगे क्योंकि न जाने नश्तर द्वारा वे रोगी के शरीर में कौनसे कीटाणु प्रवेश करादें।

उन्होंने रुई और पट्टियों को खौलते हुए पानी में औटाकर निरुत्पादक बनाने का उपाय सिखलाया। कीटाणु एक खास दर्जे की गर्मी में जिन्दा रह सकते हैं, उससे कम और ज्यादह में नहीं। खौलते हुए पानी में यह कीटाणु मर जाते हैं, और जो वस्तु उबलते हुए पानी में अथवा आग में रख दी जाती है उसके कीटाणु मर जाते हैं और इस प्रकार उनमें अपनी संतति उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती। आजकल ज़ख्मों की जो चिकित्सा होती है उसका मूल सिद्धान्त यही है कि ज़ख्म में दूषित कीटाणु प्रवेश न करने पायँ। ज़ख्मों में जो कुछ खराबियाँ आती हैं वे धूल मिट्टी, गंदे नश्तरों या पट्टियों द्वारा ही आती हैं। संक्रामक रोगों के कीटाणुओं से बचने के लिए परमेंगनेट पोटाश (Permagnate Potash) आदि कीटाणु नाशक घोलों का व्यवहार करना बतलाया।

पास्च्युर का सिद्धान्त था कि जीवित कीटाणुओं से ही कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है। उसने अपने सिद्धान्तों तथा प्रयोगों

द्वारा स्वतः सृष्टि (Spontaneous Generation) अर्थात् बिना जीव के जीव उत्पन्न होने का भूत भगा दिया। उसने बतलाया कि वस्तु जो सड़ जाती है वह कीटाणुओं का ही कार्य है; यदि कोई वस्तु कीटाणुओं से सुरक्षित रक्खी जाय और उसमें हवा और धूल आदि की गुंजायश न रहे तो उसमें कीटाणु न उत्पन्न होंगे। डेरी से बोतलों में जो दूध आता है उसका ऐसा संस्कार किया जाता है जिससे कि उसमें कीड़े नहीं रहने पाते। पहले वह खौलने के दर्जे (Boiling Point) तक गरम कर लिया जाता है और फिर बरफ़ में ठंडा किया जाता है। इसके पश्चात् उसमें ऐसी डाट लगा दी जाती है कि उसमें कीटाणुओं का प्रवेश न हो सके।

पास्च्युर का मुख्य कार्य कुत्ते आदि पागल जीवों के विष-घातक तैयार का था। पास्च्युर की बतलाई हुई पद्धति के अनुकूल कसौली की पास्च्युर इन्स्टीट्यूट में कुत्ते के काटे के
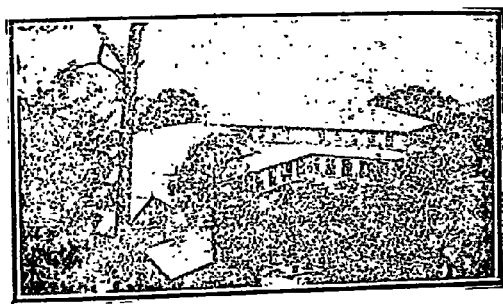
पास्च्युर इन्स्टीट्यूट कसौली

टीके और सीरम तैयार किये जाते हैं। कसौली में तैयार किए हुए टीके (Vaccine) और सीरम की सुइयों (Injections)

द्वारा लाहौर, आगरा, लखनऊ, जबलपुर, अलाहाबाद आदि कई नगरों में कुत्ते के काटे हुए रोगियों का इलाज होता है।

विशेष

भारतीय आयुर्वेद शास्त्र में भी रुधिर के जन्तुओं का उल्लेख आता है वे अपाद अर्थात् बिना पैर के, गोल और लाल रंग के माने गए हैं। इनको रक्त में होने वाले प्राण जन्तु कहा है और इनके सम्बन्ध में यह भी बतलाया गया है कि इनमें से कुछ सूक्ष्म होने के कारण दिखलाई भी नहीं देते। देखिए:—

रक्तवाहि शिरास्थानं रक्तजा जन्तवोऽणवः।
अपादा वृन्तताम्राश्च सौक्ष्मात् केचिददर्शना॥

प्राचीनों को इन कीटाणुओं का ज्ञान अवश्य था किन्तु वे लोग उनको अनुवीक्षण यंत्र द्वारा प्रत्यक्ष करके नहीं दिखला सकते थे। आजकल के विज्ञान की यही महत्ता है कि आजकल जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते हैं वे प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित कर दिये जाते हैं। बिना अनुवीक्षण यंत्र के प्राचीनों को इतना भी पता लग जाना बड़े महत्व की बात है। वे लोग संक्रामक रोगों (छूत के रोगों) के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ जानते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है उससे यह पता चलता है कि वे अणु जन्तुओं या कीटाणुओं के एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक जाने का ज्ञान रखते थे। सम्भव है कि वे रोग का कारण कीटाणु न समझते हों किन्तु वे इतना अवश्य जानते थे कि सहवास से, अंगों के स्पर्श से, साँस लेने से, साथ खाने से, एक शैया या आसन पर सोने या बैठने से और दूसरे के व्यवहार में आये हुए वस्त्र, माला, गंध आदि से कुष्ठ, ज्वर आदि एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य पर जाते हैं।

प्रसंगाद् गात्रसंस्पर्शात् निश्वासात् सहभोजनात् ।
एक शैयासनाश्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोपश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्तरम् ॥

विद्यार्थियों को चाहिए कि वे दूसरों के साथ एक थाली में खाने, दूसरों के व्यवहार किये हुए वस्त्रों आदि के व्यवहार करने का बुरा अभ्यास न डालें ।
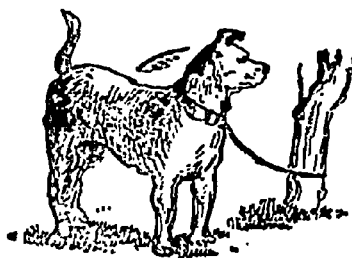
अध्याय १६

सर रोनेल्ड रौस और मलेरिया कीटाणु

गर्म देशों में मलेरिया बुखार का बड़ा दौरदौरा रहता है। सहस्रों मनुष्य इसके शिकार बनते हैं और लाखों मनुष्य उसके तीव्र-ताप से पीड़ित हो चरपाई पर पड़े-पड़े कराहा करते हैं। मलेरिया के ही कारण लोगों की तिल्ली बढ़ जाती है और बहुत से लोग जीवन भर के लिए अशक्त हो जाते हैं। ऐसे व्यापक रोग का जातीय बल पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो नित-प्रति मेहनत मज-दूरी करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं और यदि एक दिन के लिए भी बीमार पड़ जायँ तो घर के लोगों को एकादशी ही मनानी पड़ती है। ऐसे लोगों को मलेरिया और भी घातक होता है।

पहले लोग मलेरिया का कारण नहीं जानते थे। यह प्रायः नमी और दलदल के स्थान में हुआ करता है। इससे लोग समझते थे कि किसी विषैली वायु के कारण होता है। मलेरिया का अर्थ ही विषैली वायु है। सर रौस (जो कि भारत की मेडीकल सर्विस में थे) ने इस बात की खोज की थी कि मलेरिया का कीटाणु एनोफेल (Anophele) जाति के मच्छड़ में होता है, और वह अपने डङ्क से इन कीटाणुओं को मनुष्य शरीर में पहुँचा देता है। इस सम्बन्ध में सर रौस का परिश्रम और अध्यवसाय अत्यन्त सराहनीय है।

सन् १८८८ में डाक्टर लेवराँ (Dr. Laweran) नाम के

एक फ्रांसीसी डाक्टर ने मलेरिया के उपजीवी कीटाणु (Parasite) की मनुष्य के रुधिर में खोज की थी। उसके पश्चात् सर पेट्रिक मेन्सन नाम के एक स्कॉटलेण्ड निवासी वैज्ञानिक ने यह अनुमान किया था कि शायद मच्छड़ मलेरिया के कीटाणु को अस्वस्थ मनुष्य के शरीर से स्वस्थ मनुष्य के शरीर में पहुँचाता होगा; किन्तु अनुमान और प्रत्यक्ष में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। कह देना सरल है किन्तु अपनी वात को प्रमाणित कर देना अत्यन्त कठिन है, तव भी संसार इस अनुमान के लिए पैट्रिक महोदय का आभारी है। अनुमान को प्रत्यक्ष करके दिखलाने का श्रेय सर रौस को है। सर रौस का कार्य सहज न था। एक-एक मच्छड़ के ज़रा-ज़रा से भाग को अनुवीक्षण यन्त्र (Microscope) द्वारा नित-प्रति देखना और विफलता से निराश न होना उनकी महत्ता का परिचय देता है। भारतवर्ष की गरमी और पंखे के विना मच्छड़ों की जाँच एक अँगरेज की सहनशीलता की कठिन परीक्षा थी। (मच्छड़ों और हवा का स्वाभाविक वैर गिना जाता है। एक किम्वदन्ती है कि एक वार मच्छड़ों ने ईश्वर से शिकायत की कि हवा उनको वहुत तंग करती है। ईश्वर ने कहा कि अभियोगी के साथ मच्छड़ पेश किये जायँ। हवा के सामने मच्छड़ ठहर न सके और मुकदमा खारिज हो गया)। एक-एक मच्छड़ की परीक्षा में उनको दो-दो घण्टे लगते और परीक्षित मच्छड़ के सजातीय वर्ग अपनी जाति के ऊपर किए हुए इस आक्रमण का वदला लिए विना नहीं चूकते थे। उनकी नाक में दम कर लेते थे।

२१ अगस्त सन् १८९७ में उन्होंने अपनी दीवार पर एक नया मच्छड़ देखा। उस दिन उनके सहायक भी उसी प्रकार का मच्छड़ लाये। एक-एक करके मच्छड़ों की फिर जाँच शुरू हुई। यह

जाँच भी निराशाजनक प्रतीत होने लगी, किन्तु अन्त में परिश्रम सफल हुआ। मच्छड़ के पेट में एक छोटा गोलाकार घटक (cell) दिखलाई पड़ा फिर उस प्रकार के और भी मिले। दूसरे दिन उनका आकार भी बड़ा हुआ मालूम पड़ा। इस प्रकार रौस ने मलेरिया के पूरे इतिहास की खोज लगा ली। यह खोज आजकल भी जारी है, और इसका एक बहुत बड़ा विभाग भी स्थापित हो गया है जो मलेरियल सर्वे के नाम से प्रख्यात है।

रोग का कारण जान लेने से उसकी रोक में बहुत सहलता होती है। मलेरिया से बचने के लिए अब मसहरियों का बहुत प्रयोग होने लगा है। मलेरिया के कीटाणुओं को मारने के लिए कुनेन बड़ी उपयोगी प्रमाणित हुई है। मलेरिया ग्रस्त रोगियों को कुनेन बाँटना बड़ा पुण्य का कार्य है। मलेरिया के लिए आईसोनोफील की गोलियाँ भी प्रचार में आने लगी हैं; किन्तु ये कुनेन की अपेक्षा कुछ महँगी हैं। मलेरिया जब शरीर में जड़ जमा लेता है तब कुनेन के इंजेक्शन भी दिये जाते हैं। मलेरिया के दिनों में दूसरे-तीसरे दिन कुनेन की एक गोली खा लेना बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अध्याय ३०

भोजन-तत्व और विटामिन

मनुष्य के भौतिक जीवन के लिए वायु और जल के पश्चात् भोजन ही आवश्यक माना जाता है। यद्यपि मनुष्य केवल भोजन के लिए नहीं जीवित रहता, उसको मान सन्मान और यश कीर्ति भी चाहिए तथापि आहार के विना वह जीवन धारण नहीं कर सकता न उसके शरीर तन्तु वनेंगे और न शरीर में गर्मी पैदा होगी। मनुष्य के खाद्य पदार्थों में इन सव वातों के लिए पर्याप्त सामग्री रहती है। आहार शास्त्र के विशेषज्ञों (भोजन भट्टों ने नहीं) खाद्य पदार्थों का विश्लेषण कर उनमें पाँच प्रकार के तत्व (यहाँ पर रसायन शास्त्र के तत्वों से अभिप्राय नहीं है) वतलाए हैं। वे इस प्रकार हैं—

१—नोषजन (Nitrogen) प्रधान पोर्टीन (Portein) अथवा पोर्टीड (Porteid) जिन से शरीर के तन्तु तथा पेशियों के वनाने वाली सामग्री उत्पन्न होती है ये तत्व दाल, मटर, वादाम आदि पदार्थों में अधिकता से पाये जाते हैं।

२—कार्वन-उद्‌जन विशिष्ट तत्व (Carbo-hydrates) ये तत्व शरीर में गरमी पहुँचाते हैं और शक्ति देते हैं। मनुष्य के भोजन में कार्वन-उद्‌जन विशिष्ट तत्वों की मुख्यता रहती है। ये तत्व चावल, गेहूँ, जौ आदि अन्नों; और शकर, आलू, शकरकन्द आदि तरकारियों में अधिकता से पाये जाते हैं। मनुष्य जितना अधिक भौतिक श्रम करता है उतनी ही अधिक उसको इस प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती है। ये तत्व पोर्टीन

तत्वों का स्थान नहीं ले सकते हैं किन्तु पोर्टीन तत्व इनका स्थान ले सकते हैं, वे शरीर को गरमी भी दे सकते हैं। इन तत्वों में इतनी विशेषता है कि ये तत्व यदि अधिक मात्रा में खाए जायँ तो चर्बी में परिणत होकर पीछे से काम आ सकते हैं। पोर्टीन यदि उचित मात्रा से अधिक खाए जायँ तो वे गुर्दों को हानि पहुँचाते हैं। इसलिए दाल या गोश्त अधिक मात्रा में खाना स्वास्थ्य के लिए हानि कारक होता है। मनुष्य को केवल काम करने के लिए ही गरमी की आवश्यकता नहीं वरन् साधारण जीवन धारण करने के लिए भी गरमी की आवश्यकता होती है। मनुष्य के शरीर का तापमाप साधारणतया ९८,४ डिग्री रहता है। मनुष्य जब सोता है तब भी उसे प्रायः ६० कलोरी (Calorie) गरमी प्रति घंटा की आवश्यकता होती है। कलोरी एक गरमी का नाम है। एक माशा पानी को एक डिग्री सेन्टीग्रेड (१.८ डिग्री फेरेन्हाइट) गरम करने में जितनी गरमी की आवश्यकता होती है उसे कलोरी कहते हैं। १००० कलोरी को अँगरेजी में बड़ी सी (C) से लिखी हुई कलोरी (Calorie) लिखते हैं। मनुष्य को कुर्सी से उठने और ८ फ़ुट चलकर लौटने में एक बड़ी कलोरी (अर्थात् १००० छोटी कलोरी) गरमी खर्च करनी पड़ती है। व्यायाम या अधिक परिश्रम के काम में ६०० बड़ी कलोरी प्रति घण्टा खर्च होती है। साधारण मनुष्य को दिन भर में क़रीब क़रीब २८०० बड़ी कलोरी गरमी की आवश्यकता होती है। जाड़ों में मनुष्य अधिक भोजन करता है और गरमी में कम। आध सेर अन्न में प्रायः १८००बड़ी कलोरी गरमी होती है, आध सेर घी में प्रायः ४००० बड़ी कलोरी गरमी होती है।

३—चर्बी उत्पन्न करने वाले स्निग्ध पदार्थ, जैसे घी, दूध, मलाई, तिल, बादाम, मूँगफली, गोला इत्यादि इन पदार्थों से भी शरीर में गरमी पहुँचती है और शक्ति मिलती है। इन से

मनुष्य की चर्बी बनती है। मनुष्य में प्रायः १०० में पन्द्रह हिस्सा चर्बी होती है, मोटे मनुष्यों की दूसरी बात है।

४—जल तत्व—यह तत्व रुधिर में यथेष्ट तरलता रखने के लिए तथा भोजन के परिपाक के लिए आवश्यक होता है। बहुत से शाकों में, दूध, रस आदि पेय पदार्थों में यह तत्व अधिकांश में पाया जाता है। हलवाई लोगों के दूध में तो पानी होता ही है, शुद्ध गाय के थन से निकले हुए दूध में भी पानी होता है। शाकों में प्रायः तीन चौथाई जल तत्व होता है। लू में बाहर जाने से पूर्व खूब जल पी लेना आवश्यक है क्योंकि जितनी गरमी पड़ती है शरीर में उतनी ही जल की मात्रा कम हो जाती है और रुधिर में जल की मात्रा कम होने से हृदय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है। बरफ़ का पानी अधिक मात्रा में पीना हानिकारक होता है।

५—धातु मय लवण—ये लवण रुधिर में लाल कीटाणुओं दान्त, हड्डी, आदि के निर्माण में सहायक होते हैं। हरे शाकों और फलों में लोह की थोड़ी मात्रा रहती है इसलिए शाक और फल बड़े रक्त शोधक गिने जाते हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आहार शास्त्र के विशेषज्ञों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि भोजन में उपर्युक्त रासायनिक तत्वों के होते हुए भी मनुष्य को बेरी बेरी, स्कर्वी आदि रोग हो सकते हैं। मशीन के कुटे हुए चावल खाने वाले लोगों में बेरी बेरी रोग अधिकता से होता है। जापान में इस बात का प्रयोग किया गया था। नौ महीने की समुद्र यात्रा में मशीन के कुटे चावल खाने वाले २७६ मनुष्यों में १६६ मनुष्यों को बेरी बेरी रोग हुआ और उनमें से २५ मर गए। दूसरे जहाज़ में उतने ही समय की समुद्र यात्रा के लिए उतने ही मनुष्य भेजे गए और उनके भोजन में परिवर्तन कर दिया गया, चावल के

स्थान में दूध और गोश्त दिया गया उनमें से केवल चौदह आदमियों को वह रोग हुआ और वे चौदह आदमी वे थे जिन्होंने कि नये भोजन खाने से इन्कार कर दिया था। इसके पश्चात् बहुत से प्रयोग मनुष्यों और चूहों पर किये गए और यह पता चला कि कुछ वस्तुओं में कुछ ऐसे विशेष पदार्थ होते हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते हैं। ये तत्व संग्रह तो नहीं किये जा सकते हैं परन्तु अधिक गरम किये जाने से तथा सुखाये जाने से निकल जाते हैं। सूखे फल और शाकों में वह गुण नहीं होता जो कि हरे शाकों में, और डब्बे केदूधमें भी ताज़ा दूध की बराबर गुण नहीं होता। अधिक गरम करनेसे दूध में से भी ये तत्व जाते रहते हैं। सन् १९१३ में पोलेण्ड निवासी डाक्टर फंक (Funk) ने इन तत्वों का विटामिन नाम से नामकरण किया। ये पाँच प्रकार के माने गए हैं।

विटामिन ए०

यह शरीर की वृद्धि और पुष्टि करने वाला है। इसकी कमी हो जाने से शारीरिक वृद्धि और रोगों का सामना करने की शक्ति घट जाती है। क्षय, खाँसी, न्युमोनियाँ आदि रोग प्राय: इसी की कमी के कारण होते हैं। संग्रहणी और प्रसूति रोगों का तथा कुछ नेत्र रोगों का भी कारण इसी का अभाव है। यह तत्व दूध, घी, कोड लिवर ऑइल, मट्ठा, गोभी, टमाटर, आलू, मूली, गाजर, मटर और पालक के सागों में प्रचुर परिमाण में होता है। १०० डिग्री के ऊपर की गरमी में हवा के संसर्ग से कुछ देर रहने से यह तत्व नष्ट हो जाता है। जिन पदार्थों में यह पाया जाय, उन्हें हम 'ओज-वर्द्धनीय' श्रेणी की खाद्य सामिग्री कह सकते हैं।

विटामिन बी०

इससे हमारे शरीर की वृद्धि के साधनों में सहायता मिलती है। इसके अभाव में अग्नि-मांद्य, अजीर्ण, ऐंठा तथा पेट और स्नायु सम्बन्धी रोग हो जाते हैं। यह अधिकतर जौ, गेहूँ, चावल, दाल, मोटा आटा, बेंगन, आलू आदि में पाया जाता है। दो रोज़ तक भींगे रहने पर चना, मटर, और गेहूँ में यह तत्व और भी अधिक हो जाता है। भात का माँड और उबाली हुई सब्ज़ी का पानी फेंक देने से इस पोषक तत्व का अधिकांश भाग व्यर्थ चला जाता है। इसे रासायनीय तत्व कह सकते हैं। शरीर में जलन, बाल झड़ना आदि शिकायतें इसी तत्व की कमी से होती हैं।

विटामिन सी०

विटामिन सी० का पाचन क्रिया पर बड़ा असर होता है। इस तत्व की शरीर में कमी हो जाने पर आँतों में छाले, रक्त रोग (Scurvy) आदि जोड़ों का दर्द, गठिया, पायरिया आदि दाँत और मसूड़ों के रोग एवं चमड़े पर रक्त का एकत्रित होना तथा खुजली आदि चर्म रोग भी इसी के अभाव के कारण होते हैं। विटामिन सी० नीबू, सन्तरा, टमाटर, चना, अंगूर, केला, शलजम, प्याज़, गोभी, पालक, सेब आदि पदार्थों में अधिक परिमाण में पाया जाता है और यह अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकता। क्षार, अम्ल, उष्णता और वायु इसके शत्रु हैं। सूखे बीज, अनाज, मटर, और दो दलों वाले धान्यों में प्रायः इसका अभाव होता है। यह तत्व रक्त शोधनीय कहा जाता है।

विटामिन डी०

यह पोषक तत्व हड्डियों को मज़बूत करने वाला और शरीर की रक्षा करने वाला है। छोटे बच्चों का पेट बढ़ जाना, दाँत निकलने में तकलीफ़ होना, सूखते जाना, दस्त होना आदि रोग इसी के अभाव में होते हैं। सन्धिवात, प्रमेह, मधुमेह इसी की कमी का कारण हैं। घी, मक्खन, कोड लिवर ऑइल में बाहुल्य रहता है। धूप के सेवन से इसकी कमी की पूर्ति होती है। सूर्य की अल्ट्रा वायोलेट (Ultra Violet) नामक किरणों में विटामिन डी० बढ़ाने की बड़ी शक्ति है। इसीलिए डाक्टर लोग इस तत्व की शरीर में कमी हो जाने पर क्षीण रोगियों को धूप में रहने की सलाह देते हैं। यदि धूप में बैठ कर जैतून या सरसों का तेल लगाया जाय तो शरीर में इस तत्व की वृद्धि होती है। आयुर्वेद में इस प्रकार के तेल मलने का बड़ा महत्व बतलाया गया है।

विटामिन ई०

विटामिन ई० के अभाव में मनुष्यों की सन्तानोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है। पुरुषों में नपुंसकता और स्त्रियों में बाँझपन आ जाता है। जौ, गेहूँ आदि अन्नों में तथा दूध, घी, नारियल आदि में ए० और बी० के साथ यह भी रहता है। खाद्य वस्तुओं में यदि विटामिन ई० न हो तो सन्तान उत्पन्न होना कठिन है। आटे को छान देने से उसकी भूसी में यह तत्व बहुत कुछ निकल जाता है। इसीलिए बिना छने आटे की रोटी अधिक लाभकारी होती है।

विटामिन तत्व विभिन्न खाद्य पदार्थों में अलग अलग परिमाणों में पाये जाते हैं, गेहूँ की रोटी में बी० और सी०

नम्बर का विटामिन है। दूध में सानी हुई मोटे आटे की रोटी में विटामिन डी० तथा ए० और बी० दूने परिमाण में हैं। कच्चे दूध में ई० के अतिरिक्त सभी वर्गों का विटामिन दूनी मात्रा में है। औटे हुए दूध में सी० वर्ग की मात्रा कम हो जाती है। नीवू और नारंगी में बी० और सी० वर्गों का बाहुल्य है। सेम, चना और मूँग में ए० बी० सी० वर्गों की अधिकता है। सफ़ेद डबल रोटी, मूली का साग, खीरा ककड़ी, शकरकन्द आदि पदार्थों में विटामिन की मात्रा कम है। सोयाबीन में प्रायः सभी प्रकार के विटामिन अधिकता से पाये जाते हैं। इसमें प्रोटीनों की मात्रा बहुतायत से होती है।

ताज़े हरे फलों और शाकों का सेवन और शुद्ध दूध हमें विटामिन तत्वों को प्रदान करता है। धूप का सेवन भी इस दृष्टि से उत्तम है। सरसों का तेल आदि स्निग्ध पदार्थों में विटामिन नहीं है, यही कारण है कि यह देर में हज़म होते हैं। घास पात खाकर, खुली हवा और धूप में रहने वाले वन्य प्राणी, सभ्य नागरिकों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और बलवान् होते हैं। हिरन, बन्दर और गाय के बच्चों की फुर्ती इसको प्रमाणित करती है कि कृत्रिम, बहुमूल्य, गरिष्ट भोजनों की अपेक्षा ताज़े और पोषक खाद्य पदार्थ अधिक बल वर्द्धक हैं।

परिशिष्ठ

विद्युत् और चुम्बकत्व

बादल की गरज और बिजली की चमक से मनुष्य बहुत काल से परिचित हैं। यह एक प्राचीन धारणा है कि इन्द्रदेव बिजली द्वारा बज्रपात किया करते हैं। उनकी इसी शक्ति के कारण उन्हें 'सुरराज' कहा जाता है। अब मनुष्य को भी इन्द्र की भयावनी शक्ति का रहस्य मालूम हो गया है, किन्तु यह एक दिन के परिश्रम का फल नहीं है। मनुष्य ने जिस प्रकार अग्नि जैसी प्रचण्ड और भयंकर वस्तु को अपने लिए परम उपयोगी बना लिया है, उसी प्रकार आज कल उसने बिजली जैसी भयंकर वस्तु को कल्पवृक्ष के समान हितकर सिद्ध कर दिया है। इसका लम्बा इतिहास है। आइये देखें कि किस प्रकार मनुष्य को बिजली के रहस्य का पता लगा।

लोग आकर्षण करने वाली वस्तुओं का हाल बहुत काल से जानते थे। चुम्बक के अतिरिक्त, जो केवल लोहे को ही आकर्षित कर सकता था, कहरुआ अर्थात् अम्बर आदि कई ऐसी वस्तुऐं उन्हें ज्ञात थीं, जो तृण आदि हलके पदार्थों को आकर्षित कर सकती थीं।

अँग्रेजी शब्द इलेक्ट्रिसिटी (Electricity) एक यूनानी शब्द से बना है जिसका अर्थ अम्बर है। अम्बर (Amber) को कपड़े आदि पर रगड़ने से उसमें आकर्षण शक्ति पैदा हो जाती है। अम्बर (कर्पूर मणि) का उल्लेख विहारी ने भी किया है। एक स्त्री मोतियों की माला पहिने हुए थी। उसके शरीर

की पीतता के कारण मोती की माला पीली सी हो गई थी। सखी इस बात की पहचान करने के लिए कि वास्तव में यह पीले अम्बर की माला है अथवा मोतियों की माला है उसमें तृण छुआ कर देखती है। वह दोहा इस प्रकार है:—

"ह्वै कपूर मणिमय रही, मिलि तन दुति मुकुतालि।
छिन छिन खरी विचच्छनौ, लखति छ्वाय तिनु आलि॥"

योरुप में भी अठारहवीं शताब्दी से पूर्व इन बातों के सम्बन्ध में इससे अधिक ज्ञान न था। वेचारे भारतवासी अपनी विशेष परिस्थिति के कारण इन बातों में विशेष उन्नति न कर सके और योरुप वाले अपने सराहनीय अध्यवसाय से खोज में लगे रहे और उनके परिश्रम ने उनको प्राकृतिक शक्तियों पर विजय लाभ कराया।
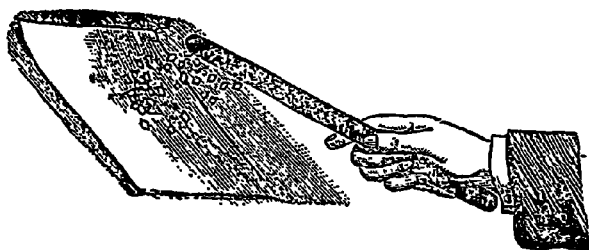
डाक्टर गिलबर्ट (Doctor Gilbert) ने पहले पहल इस बात को पता लगाया कि अम्बर में ही आकर्षण नहीं है वरन् रगड़ने से और वस्तुओं में भी आकर्षण शक्ति आ जाती है। काँच की डंडी को रेशम पर रगड़ने से बिजली की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार चमड़े की वत्ती को फलालेन पर रग-ड़ने से बत्ती में काग़ज़ के टुकड़ों को आकर्षित करने की शक्ति

आ जाती है (पिछले पृष्ठ पर चित्र देखिए)। बाज़ार में जो काले कंघे बिकते हैं, उनको सर पर रगड़ने से उनमें काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों को आकर्षित करने की शक्ति आ जाती है। विद्यार्थी-गण इसका सहज ही में प्रयोग कर सकते हैं।

भिन्न भिन्न पदार्थों पर भिन्न भिन्न वस्तुओं की रगड़ से धनात्मक (Positive) या ऋणात्मक (Negative) बिजली उत्पन्न होती है। जब काँच का डंडा रेशम पर रगड़ा जाता है तो उसमें धनात्मक बिजली आती है और जब इबोनाइट (रबड़ आदि से बना हुआ आबनूसी रंग का एक पदार्थ) बिल्ली की खाल पर रगड़ा जाता है तब ऋणात्मक बिजली उत्पन्न होती है। काँच भी जब बिल्ली की या लोमड़ी की खाल पर रगड़ा जाता है तब उसमें ऋणात्मक बिजली उत्पन्न होती है। एकसी बिजली रखने वाले पदार्थ एक दूसरे को हटाते हैं। भिन्न प्रकार की बिजली रखने वाले पदार्थ एक दूसरे को आकर्षित करते हैं।

इस प्रकार बिजली के ज्ञान में लोगों ने बहुत कुछ उन्नति करली थी, किन्तु यह सब उन्नति विशेष उपयोगी न थी। इससे न तो तार ही काम कर सकते थे और न बिजली की रोशनी ही हो सकती थी। इन बातों के लिए एक दूसरी प्रकार की बिजली का हमको अध्ययन करना पड़ेगा।

गैलवेनी की बैटरी

आजकल हम दुकान दुकान पर छोटी छोटी बैटरियाँ देखते हैं। गाँव तक में इन बैटरियों का प्रचार हो गया है। इनको देखकर क्या कोई अनुमान कर सकता है कि इनका मेंढ़कों से कुछ सम्बन्ध है। कहाँ कूप निवासी मेंढ़क और कहाँ उज्वल प्रकाश वाली बिजली की बैटरी ? ज़रा देखिए कितना

अन्तर है, किन्तु बिजली की बैटरियों का आविष्कार मरे हुए मेंढ़कों से ही हुआ है।

कहा जाता है कि प्रोफेसर गैलवेनी की धर्मपत्नी के लिए डाक्टरों ने मेंढ़कों का शोरवा वतलाया था। उसी हेतु मारे हुए कुछ मेंढ़क प्रोफेसर साहव की मेज़ पर पड़े थे। प्रोफेसर साहव उन दिनों विजली के भी कुछ प्रयोग कर रहे थे। इत्तिफ़ाक़ से किसी धातु के तारों से मेंढ़क की टाँग छू गई और उसके स्पर्श से मेंढ़क दुलत्ती फैंकने लगा। कुछ लोगों का कथन है कि यह घटना आकस्मिक नहीं है। प्रोफेसर साहब उन दिनों सावयव पदार्थों (Organic objects) के ऊपर विजली के प्रभाव का अनुसन्धान कर रहे थे और उन्होंने जान बूझ कर मेंढ़क की टाँगों पर प्रयोग किया था। सम्भव है ऐसा ही हो, किन्तु जान बूझ कर प्रयोग में रगड़ की विजली का ही प्रयोग होता। इस नई प्रकार की विजली की ओर उनका ध्यान न जाता। प्रोफेसर साहव ने मेंढ़कों पर और प्रयोग करने प्रारम्भ किये और वहुत खोज बीन तथा उलट पलट के पश्चात उन्हें पता चला कि यदि एक ओर ताँबे का तार बाँधा जाय और दूसरी ओर जस्ते का तो अधिक प्रभाव होगा।

गैलवेनी ने यह खोज तो करली किन्तु मेंढ़क की टाँगों की हरकत की ठीक व्याख्या न कर सके। वे समझते थे कि जानवर के माँस तन्तुओं में विजली होती है जो कि इन तारों द्वारा उत्तेजित हो जाती है। वोल्टा नाम के एक प्रोफेसर ने गैलवेनी की व्याख्या भ्रमपूर्ण प्रमाणित करदी। उसने दिखलाया कि जब दो धातुओं का संयोग होता है तभी विजली पैदा होती है, एक धातु के प्रयोग से नहीं होती। उसने सोचा कि जो कुछ करामात है वह धातुओं के संयोग तथा कुछ नमी की (जो कि गोश्त

में थी) है। इस प्रकार उसने दो भिन्न धातुओं के गोल पतरों के बीच में अम्लित जल (गन्धक का तेज़ाब आदि खटाई मिश्रित जल) में भीगी हुई पानी की गद्दियाँ रक्खीं और अन्त के टुकड़ों में दो तार बाँध कर बिजली की चिंगारियाँ उत्पन्न करलीं। फिर उसने अलग अलग बर्तनों में धातु के दो दो टुकड़े रख कर प्रयोग किया, इसमें उसे अधिक सफलता हुई।
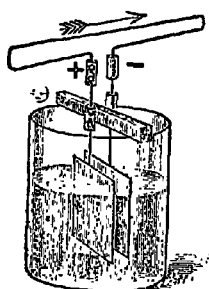
विद्युत्-प्रवाह के दबाव के माप को वोल्ट (Volt) कहते हैं। इस माप का नाम वोल्टा पर ही पड़ा। इस प्रकार की एक घटक का नमूना चित्र में दिया हुआ है। एक घटक (Cell) में दो वोल्ट का दबाव होता है। काँच के गिलासों से विद्यार्थी भी वोल्ट की बैटरी बना सकते हैं।

चार काँच के गिलास लिये जायँ। उनमें थोड़ा पानी मिला कर गंधक का हलका तेज़ाब भरा जाय। एक गिलास में एक ताँबे की पतरी और एक जस्ते की पतरी किसी धातु के तार से इस प्रकार मिलाई जायँ कि जस्ते की पतरी का मेल, ताँबे की पतरी से हो जाय। जब दोनों सिरों के छोर के (एक ताँबे की पतरी से मिला हुआ और दूसरा जस्ते की पतरी से मिला हुआ) तार मिलाये जायँगे तो बिजली का पूरा चक्कर दौड़ जायगा। इसी को बिजली की धारा (Current) कहते हैं। ऐसे चक्कर में बिजली का दबाव इतना कम होता है कि इस तार को बेखटके हाथ से छू सकते हैं। इसमें बिजली का प्रवाह दोनों तारों के मिलाते समय मालूम होगा, अथवा जब कि वह तार ज़बान से छुआ जाय या उसमें छोटा लम्प लगाया जाय। जितने गिलास अधिक होंगे उतना ही दबाव अधिक बढ़ेगा। एक गिलास में (जिसको वैज्ञानिक

भाषा में सैल (Cell) वा घटक कहेंगे) दो वोल्ट से अधिक दबाव न होगा, चाहे वह गिलास समुद्र के परिमाण का ही क्यों न हो। ताँबे की पतरी का सिरा धनात्मक ध्रुव और जस्ते की पतरी का सिरा ऋणात्मक ध्रुव कहलाता है।

हाथ की बैटरियाँ भी प्रायः इसी सिद्धान्त पर बनती हैं। जस्ते की एक चोंगी के बीच में उसी लम्बाई का एक कार्बन का टुकड़ा रहता है। चोंगी और कार्बन के बीच का भाग मसाले से भर दिया जाता है। किन्तु उनमें तरल पदार्थ न रखकर नमीदार मुलायम पिट्ठी की भाँति का पदार्थ होता है, जिसमें प्रायः एमोनियम क्लोराइड, जिंक क्लोराइड और प्लास्टर ऑफ पेरिस थोड़े पानी के साथ मिश्रित रहता है। इस मसाले को तर करने के लिए कभी-कभी नई बैटरी में पानी डालना पड़ता है।
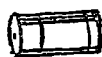
टॉर्च, बैटरी, और बल्ब

तर और सूखी दोनों ही प्रकार की बैटरियाँ प्रधान बैटरियाँ (Primary batteries) कहलाती हैं। दूसरी प्रकार की गौण बैटरियों (Secondary batteries) के विषय में भी कुछ जानलेना आवश्यक है।

गौण बैटरियाँ

ये बैटरियाँ वास्तव में बिजली उत्पन्न करने वाली बैटरियाँ नहीं हैं, वरन् संचायक बैटरियाँ (Accumulators) हैं। इनके द्वारा बिजली संचित की जाकर पीछे काम में लाई जाती है। मोटरों में प्रायः इसी प्रकार की बैटरियाँ होती हैं। जहाँ

पर ये संचायक होते हैं वहाँ पर हर वक्त डायनेमो चलाने की आवश्यकता नहीं रहती और इनके द्वारा विद्युत्-प्रवाह एक गति से आता रहता है। प्रधान बैटरियों में रासायनिक शक्ति को विद्युत शक्ति में परिवर्तित किया जाता है और इस प्रकार की बैटरियों में विद्युत-शक्ति को रासायनिक शक्ति में परिवर्तित कर लिया जाता है और फिर रासायनिक शक्ति को विद्युत् शक्ति के रूप में बदला जाता है। इसमें दो भिन्न प्रकार की प्लेटों की आवश्यकता नहीं होती। एक ही प्रकार की प्लेटों से काम चल जाता है। इसमें हलके गंधक के अम्ल (Sulphuric acid) का प्रयोग होता है। बैटरी का एक छोर (ध्रुव) धन (Positive) होता है और दूसरा ऋण (Negative)। जब तक दोनों छोर अलग रहते हैं तब तक बिजली की धारा नहीं चलती, जब दोनों छोर मिल जाते हैं तब पूरा चक्कर हो जाता है और बिजली की धारा (Current) बहने लगती है। बिजली वाले हिन्दी में ऋण तार को ठंडा तार और धन को गरम कहते हैं।

कुछ जानने योग्य बातें

बिजली की धारा तभी चलेगी जब कि तार का चक्कर पूरा हो। जब तक स्विच खुली रहती है तब तक चक्कर पूरा रहता है। स्विच बन्द कर देने से तार कट सा जाता है और प्रवाह रुक जाता है। बिजली के दोनों तार जब किसी लोहे द्वारा या रबर या रेशम आदि के फट जाने से मिल जाते हैं तो प्रवाह आगे नहीं बढ़ता। इसको शॉर्ट सर्किट (Short circuit) अर्थात् छोटा चक्कर कहते हैं। बिजली वाले इसको 'शॉर्ट' हो जाना कहते हैं।

बिजली के सम्बन्ध में दूसरी जानने योग्य बात यह है कि कुछ वस्तुएँ चालक (Conductors) होती हैं और कुछ अचालक (Non conductors) वा अवरोधक होती हैं। चालक वस्तुएँ वे

कहलाती हैं जिनके द्वारा बिजली की धारा सहज में बहती रहती है। जिस प्रकार धातुओं द्वारा ताप एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँच जाता है उसी प्रकार बिजली भी धातुओं द्वारा एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच जाती है। रेशम या सूत का डोरा भीग जाने से चालक हो जाता है।

अवरोधक पदार्थों में बिजली इधर से उधर नहीं आती है। काष्ठ, चीनी, रबर ये चीजें अवरोधक मानी जाती हैं। तार पर जब रबर लपेट दी जाती है तो उससे बिजली निकलने नहीं पाती है। तार के खम्बों में चीनी के लट्टू तार की बिजली को खम्बे में प्रवेश कर जाने से रोके रहते हैं। यदि ये 'प्रथकन्यासक' (Insulator) अर्थात् अलग करने वाले न हों तो तार की बजली खम्वों में चली जाय और बिजली का प्रभाव वहीं रुक जायगा। रबर के दस्ताने पहिन कर तार छूने में कोई हानि नहीं होती। लकड़ी पर खड़े होने से बिजली का प्रवाह पृथ्वी तक नहीं जाने पाता परन्तु लकड़ी मोटी और सुदृढ़ होनी चाहिए। भीगी न होनी चाहिए। इसलिए लकड़ी पर खड़े हो कर एक तार छू सकते हैं। दोनों तार किसी हालत में न छूना चाहिए।

मकानों पर जब बिजली गिरती है तो जो वस्तुएँ उसके रास्ते में होती है वे तापाधिक्य के कारण एक साथ बढ़कर दीवाल को फाड़ देतीं हैं। मकानों को सुरक्षित रखने के लिए उनके ऊपर ताँबे या और किसी धातु की लम्बी पत्ती लगा दी जाती है। बिजली नुकीली चीज़ में होकर जल्दी प्रवेश करती है। धातु की पत्ती में ऊपर की ओर एक त्रिशूल लगा दिया जाता है और वह ज़मीन में आठ दस फ़ुट गाड़ दी जाती है। उस त्रिशूल द्वारा बादल की बिजली और पृथ्वी की बिजली का जमा खर्च बराबर हो जाता है और बिजली शक्तिहीन हो जाती है। यदि जमा

खर्च बराबर न हो पाय और उस मकान पर बिजली गिरे ही तो वह पहले त्रिशूल की नोंक पर आयगी और तुरन्त ही धातु की पत्ती द्वारा पृथ्वी में प्रवेश कर जायगी। इस प्रकार मकान सुरक्षित रहेगा। आगरे में ताज-महल पर ऐसा ही बिजली का वाहक (Conductor) लगा हुआ है। बिजली का काम बड़ी सावधानी से करना चहिए। इसमें जान का खतरा रहता है।

चुम्बक

रगड़ की बिजली तथा गैलवेन की बैटरियों की रासायनिक बिजली का पाठकों को साधारण परिचय हो गया होगा किन्तु बिजली के जो बहुत बड़े-बड़े कार्य होते हैं वे विना चुम्बक और विद्युत्-चुम्बक के नहीं हो सकते। अतः उनका भी चलता हुआ परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। चुम्बक के गुण लोग बहुत दिनों से जानते थे। चुम्बक-पत्थर में से निकले हुए लोहे को वैद्य लोग 'कान्त' कहा करते हैं और उसकी भस्म भी बनाते हैं।

हिन्दी-साहित्य में भी चुम्बक का नाम आता है। कबीर ने चुम्बक का उदाहरण देते हुए कहा है कि चुम्बक की तरह जैसा नाम वैसा गुण होना चाहिए। चुम्बक का नाम ही है आकर्षित करने वाला। वह अपनी ओर लोहे को आकर्षित कर उसे अपने में चिपका लेता है। चुम्बक पत्थर में पृथ्वी के ही चुम्बकत्व से चुम्बक शक्ति आती है। इस पत्थर पर दूसरे लोहे के टुकड़ों को एक क्रम से रगड़ने से उनमें भी चुम्बक शक्ति आ जाती है। इस प्रकार के लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े यदि स्वतन्त्र छोड़ दिये जायँ तो उनका एक सिरा उत्तर की ओर हो जाता है। यदि किसी स्वाभाविक या कृत्रिम चुम्बक से एक सुई को रगड़ा जाय तो उसमें चुम्बकत्व आ जाता है। यदि उसको किसी कार्क (Cork) के टुकड़े में आरपार कर दिया जाय और यदि उस भाग को पानी

में डाला जाय तो वह उत्तर की ओर घूम जायगी। यदि चुम्बकत्व प्राप्त की हुई सुई को रेशम के धागे से टाँग दिया जाय तो उसका
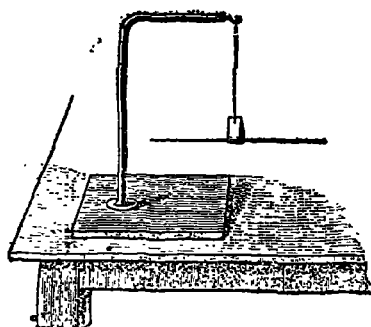
एक छोर उत्तर की ओर होगा और दूसरा दक्खिन की ओर यदि उसको घुमा फिरा भी दिया जाय तो भी उसके छोर पूर्ववत् उत्तर दक्खिन की ओर आ जायँगे। (चित्र देखिए)। कुतुबनुमा भी इसी सिद्धान्त पर बना होता है। उसकी सुई चाहे जिस ओर की जाय वह घूम फिर कर उत्तर की ओर आ जायगी। कविवर विहारी ने भी एक जगह किबलनुमा (कुतुबनुमा) की उपमा दी है। 'वाही तन ठहराति यह किबलनुमा लौं दीठ'।

अस्तु, चुम्बक में लोहे को आकर्षण करने की शक्ति होती है और वह स्वयं उत्तर की ओर आकर्षित हो जाता है। कृत्रिम चुम्बक प्रायः दो प्रकार के होते हैं—एक दण्डाकार और दूसरे नालाकार। प्रत्येक चुम्बक के दो सिरे (ध्रुव) होते हैं—एक उत्तर ध्रुव और दूसरा दक्षिण ध्रुव। यदि एक टुकड़े को बीच से काट दिया जाय तो उन टुकड़ों में भी यही दो ध्रुव उत्पन्न हो जायँगे। एक टुकड़े के चाहे जितने टुकड़े किये जायँ उन सब में यह दोनों ध्रुव पैदा हो जायँगे। (अगले पृष्ठ पर चित्र देखिए)। यद्यपि चुम्बक के दोनों छोर लोहे को आकर्षित करते हैं, तथापि समान ध्रुव एक दूसरे को हटाते हैं और असमान ध्रुव एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। यदि दो चुम्बकों के उत्तर ध्रुव एक दूसरे के निकट लाये जायँ तो वे एक

दूसरे को हटा देंगे। इसी प्रकार दक्षिण ध्रुव भी एक दूसरे को
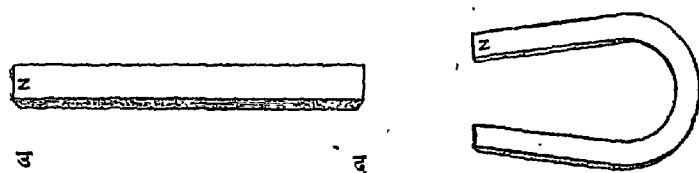
दण्डाकार नालाकार

हटायँगे, किन्तु यदि उत्तर और दक्षिण एक दूसरे के पास रक्खे जायँ तो एक दूसरे को आकर्षित कर लेंगे और मिल जायँगे।

प्रत्येक टुकड़ों में दोनों ध्रुव दिखलाई देते हैं

इसी आधार पर एक खिलौना भी बनाया जाता है, जिसमें यदि सीता का मुँह रावण की ओर कर दिया जाय तो वे मुँह फेर लेती हैं और राम की ओर किया जाय तो उस ओर मुँह किये रहती हैं। ऋण और धन बिजली के सम्बन्ध में भी यही बात है कि समान बिजलियाँ एक दूसरे को हटा देती हैं और असमान एक दूसरे को आकर्षित करती हैं।

विद्युत् चुम्बक

बिजली के आविष्कार के पश्चात् बिजली और चुम्बक के परस्पर सम्बन्ध के बारे में अनुसन्धान होने लगा। लोगों को पता चला कि बिजली में भी आकर्षण करने की शक्ति है और

चुम्बक बिजली के तार से विशेष-रूप से आकर्षित हो जाता है। यदि बिजली के तार के पास कुतुबनुमा लाया जाय तो वह उत्तर दक्षिण की ओर न झुक कर तार से समकोण बना लेता है।

इसके पश्चात् लोगों ने बिजली का प्रभाव लोहे पर देखा। यदि मुलायम लोहे को बिजली के ऐसे पृथकन्यस्त (Insulated) तार की कुण्डली में रक्खा जाय जिसमें होकर बिजली की धारा गुज़र रही हो तो उसमें चुम्बक की शक्ति आ जाती है; नीचे चित्र देखिए।

किन्तु यह शक्ति तभी तक रहती है जब तक बिजली की धारा बहती रहे। (किन्तु यदि कड़ा लोहा रक्खा जाय तो यह शक्ति स्थायी रूप से आ जाती है) इसी को विद्युत्-चुम्बक कहते हैं। तार तथा बिजली की घंटी इत्यादि में विद्युत् चुम्बक का ही प्रयोग होता है। इसके द्वारा इच्छानुकूल किसी लोहे में आकर्षण शक्ति उत्पन्न की जा सकती है और हटाई जा सकती है। घंटी में अपने आप बिजली का प्रवाह जारी होकर टूट जाता है और घंटी बजने लगती है। (चित्र देखिए)। यह सब विद्युत-चुम्बक (Electro-magnatism) का ही चमत्कार है।
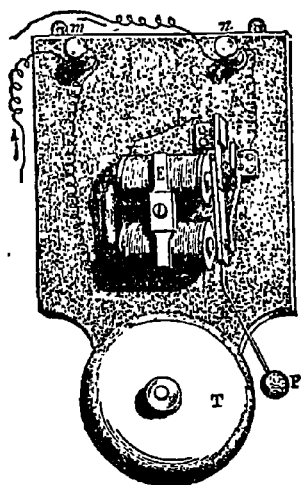
बिजली की घंटी

बिजली उत्पन्न करने के सम्बन्ध में दो तरीक़े बतला दिये गये हैं। एक रगड़ से उत्पन्न करने का, दूसरा बैटरियों से। किन्तु बिजली की शक्ति से जो भारी-भारी काम होते हैं, वे डाइनेमो

(Dynamo) अर्थात् शक्ति-उत्पादक यंत्रों द्वारा होते हैं। ये यंत्र कृत्रिम चुम्बक के दोनों ध्रुवों के बीच में एक डंडे पर लपेटे हुए तारों के घुमाने से बनते हैं। इसका यह सिद्धान्त है कि जहाँ कोई चुम्बक रहता है वह अपनी शक्ति को चारों ओर फैलाता रहता है। इसी शक्ति से लोहे के कण आकर्षित हो जाते हैं।
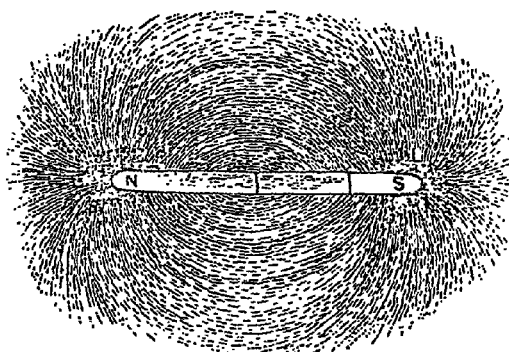
लोहे के कण न हों तो ये शक्ति की रेखाएँ सूर्य की किरणों की भाँति निकलती रहती हैं; अन्तर इतना है कि ये रेखाएँ तभी
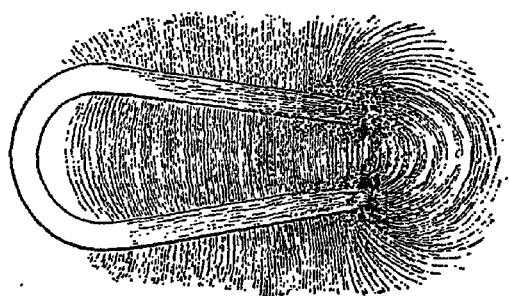
दिखलाई पड़ती हैं जब कि लोहे का बुरादा हो और चुम्बक से आकर्षित हो। चुम्बक-शक्ति-रेखाओं के लिए चित्र देखिए। यदि इन रेखाओं में होकर कोई तारों की कुण्डली घुमाई जाय

तो अधिक विद्युत-शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यह बात पहले पहल माइकिल फेरेडे (Michael Faraday) ने मालूम की थी। (माइकिल एक साधारण लुहार का लड़का था और जिल्दसाज़ी का काम करता था। जिल्दसाज़ी का ही काम करते करते उसे बिजली के विज्ञान में रुचि हो गई। कहा जाता है कि उसने जिल्द बँधने के लिये आई हुई किसी किताब में बिजली के बारे में पढ़ा था।) वह यह तो जानता था कि बिजली की कुण्डली के भ.तर लोहा रखने से उसमें चुम्बकत्व आ जाता है। इसी सम्बन्ध में उसके मन में यह स्वाभाविक प्रश्न उठा होगा कि क्या चुम्बक से भी बिजली उत्पन्न हो जाती है ? जब वह चुम्बक के भीतर तार की कुण्डली घुमाने के प्रभाव को देख रहा था तो उसे सहसा मालूम हुआ कि कुण्डली में बिजली आ गई। फिर जैसे जैसे ज़ोर से उसे घुमाया गया उतनी ही अधिक बिजली उत्पन्न हुई। इसके पश्चात् कुण्डलियाँ भाप के इंजिन की शक्ति से घुमाई जाने लगीं और आजकल के से बड़े-बड़े डाइनेमो बनने लगे। आजकल बिजली उत्पन्न करने के लिए भाप से चलने वाले इंजिनों के अतिरिक्त तेल (मिट्टी के तेल अथवा क्रूड आइल) के इंजिनों का भी प्रयोग अधिकता से होता है। किसी जल प्रपात, दरिया या नहर के पानी की ज़ोरदार धारा द्वारा पहिया घुमाकर डाइनेमो से बिजली उत्पन्न की जा सकती है। इस प्रकार की बिजली को हाइड्रो इलेक्ट्रिसिटी (Hydro Electricity) अर्थात् जल-बिजली कहते हैं। यह बिजली बहुत सस्ती पड़ती है।